"हमारे अंदर अज्ञान से जमे हिमखंड को तोड़ने के लिए पुस्तक एक कुठार है।" -काफ्का

समीक्षा,संवाद और सूचनाओं की

# साहित्य नंदिनी

वर्ष–6, अंक–12, दिसम्बर 2024 RNI No. DELHIN/2017/74713/19-02-18

## दो शब्द

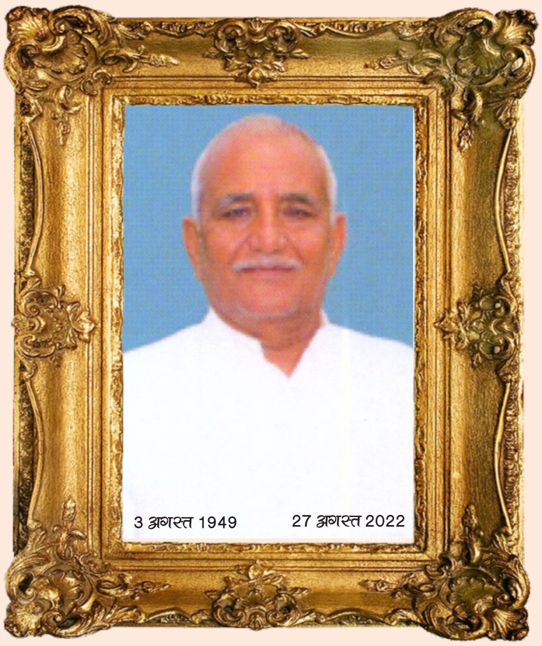


**स्व. फूलचंद यादव**

बाबू जी अत्यंत ईमानदार, कर्मठ एवं कर्तव्यपरायण व्यक्ति थे। जब तक वे नौकरी में रहें उनका पूरा ध्यान सिर्फ अध्ययन-अध्यापन में लगा रहा। सेवानिवृत्त होने के पश्चात् उनका पूरा समय पढ़ने-लिखने में व्यतीत होने लगा।

उन्होंने अपने जीवन के संघर्ष में कभी भी धैर्य और हिम्मत नहीं खोया। उनका मानना था कि जितना घिसे जाओगे उतना ही चमकोगे, सोचने-समझने की क्षमता बढ़ेगी। इसलिए संघर्ष में कभी घबराना नहीं चाहिए। जीवन में यदि संघर्ष है तो समझिए कि आप इस संघर्ष के काबिल हैं, आप और भी खरे होकर प्रस्फुटित होंगे अक्सर वे बीज का उदाहरण दिया करते थे।

वे रुकने में विश्वास नहीं करते थे, उनका मानना था कि अपने आपको बाँधने के बजाय विस्तार देना चाहिए, चारों तरफ अपनी सकारात्मक ऊर्जा फैलाना चाहिए और जहाँ भी रहें, वहाँ खुशियाँ और प्यार फैलाना चाहिए।

एक कहावत है - "बाढ़े पूत पिता के धर्म, खेती उपजे अपने कर्म"। पिता जी का विचार, शिक्षा और धर्म का फल हम सभी भाइयों को मिला है। आज वे भौतिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं, किंतु हमारा प्रयास है कि उनके विचार लोगों तक पहुँचा सकें इसी क्रम में पहला प्रयास है उनकी बाल कविताओं को प्रकाशित करवाना, जिसमें उनके बच्चों के प्रति प्रेम के साथ प्रकृति-प्रेम भी साफ झलकता है। वे इन कविताओं के माध्यम से सदैव हमारे बीच उपस्थित रहेंगे...

सुभाष चन्द्र यादव

समीक्षा: “एक थी चिड़िया” (बाल कविता संग्रह)

# साहित्यकार का स्वचिंतन

**दिविक रमेश, साहित्यकार**

आज अपना एक बहुत ही विशिष्ट अनुभव साझा कर रहा हूँ। यह अनुभव हुआ 19 अक्टूबर, 2024 को साहित्य अकादेमी के सभागार में। अवसर था स्व. फूलचंद यादव की पहली पुस्तक (बाल कविता-संग्रह) का लोकार्पण।वस्तुत: मेरी निगाह में, यह अवसर इस पुस्तक के साथ एक आदर्श और प्रेरणादायी पुत्र कमांडेंट सुभाष यादव के लोकार्पण का भी रहा। सुभाष यादव फूलचंद यादव जी के तीन पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र हैं। कार्यक्रम को भावांजलि नाम दिया गया। एक बहुत ही गम्भीर, समृद्ध और ऐतिहासिक चर्चा गोष्ठी का आनंद अब तक मेरे साथ है। लोकार्पण के अवसर पर बालसाहित्य पर इतनी गम्भीर चर्चा-गोष्ठी हो सकती है, ऐसा अपवाद स्वरूप ल

मुझे याद आ रहा है कि जब मैं साहित्य अकादेमी के लिए अपने संपादन में बाल साहित्य की एक पुस्तक तैयार कर रहा था तब मुझे ऐसी संतान भी देखने को मिली जिसने अपने स्वर्गीय लेखक पिता की रचना देने से साफ मना कर दिया। उसमें रुचि न होने के कारण। अत: एक आदर्श पुत्र के रूप में मैं सुभाष चंद्र यादव जी को प्रणाम करता हूँ। वस्तु और शिल्प आदि की दृष्टि से यह पुस्तक अपनी विविधधर्मी रचनाओं के कारण विशिष्ट कही जा सकती है। यहाँ भाषा-शैली के स्तर पर लोक और बोली भी है तो रूप के स्तर पर प्रयोगधर्मी संवादयुक्त कविता भी है तो प्रभाती (जागो राज दुलारे) आदि भी और साथ ही काव्य-कथा रूप में बीज जैसी कविता भी। वस्तुगत विविधता के रूप में प्रकृति, पर्यावरण, पशु-पक्षी जगत, महापुरुष आदि हैं। सबसे बड़ी बात है इन रचनाओं में समायी वह जरूरी दृष्टि जो सब प्राणियों को सकारात्मक और बराबरी की दृष्टि से देखती है। इस दृष्टि को खासकर ‘काग’ कविता और तुलसी के काग कविताओं में देखा जा सकता है। यहाँ उनके प्रति रुढ़िगत सोच पर सकारात्मक प्रहार किया गया है। मनुष्यता का सच्चा रूप क्या होना चाहिए इसकी समझ ‘बीज’ कविता में बखूबी समायी हुई है जिसे बीज के रूपक से चित्रित किया गया है। ये कविताएँ अनेक अर्थ छवियों से सम्पन्न हैं। एक थी चिड़िया कविता में जीवन दृष्टि के रूप में अपनी निजी मौज मस्ती और दूसरों के हित का ध्यान रखना मजे-मजे में रेखांकित हुआ है। ‘चकर-बकर’ जैसे शब्द आकर्षित हैं। हे विहंग में फिर पक्षी के माध्यम से अपने जीने को अपने ढंग से जीने की स्वतंत्रता का भाव महत्त्वपूर्ण ढंग से उभरा है।

***हे विहंग!***
***तू कहाँ से आई, कहाँ है तेरा डेरा?***
***आओ मेरे घर आँगन में, करो मुंडेर बसेरा।***

***आई हूँ मैं बड़ी दूर से, पर्वत पेड़ है डेरा***
***मैं विहंग अम्बर में बिहरूँ, क्यूँ किसी के घर हो डेरा..।***

ये कविताएँ ( एक अपवाद को छोड़ दिया जाए तो), आज की उन उत्कृष्ट कविताओं के समकक्ष हैं जो उपदेश देने की बजाए अपने पाठक को मित्रवत मानकर उसके साथ समझ साझा करने की पद्धति अपनाती हैं। अत: ये महत्त्वपूर्ण और जरूरी कविताएँ हैं।

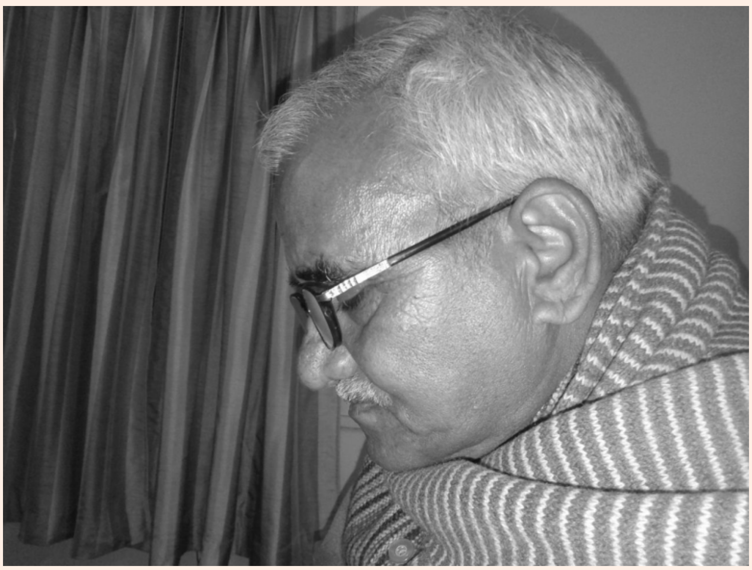

आलेख

# प्रयोगधर्मी नयी कविता का उत्तर काल और समकालीन कविता...

अजित कुमार राय

कविता आत्म सत्य की लयात्मक अभिव्यक्ति है । निजी सुख - दुःख, आस्था - अनास्था से अधिक यथार्थ के सार्वजनिक सन्दर्भों की आत्मगत पीड़ा कवि की विराट संवेदना में परावर्तित होती है । इस प्रकार इस सत्य का परिविस्तार निजता के बिन्दु से लेकर समग्र सामूहिकता तक, निगूढ़ अन्तर्जगत से लेकर ठोस प्रत्यक्षानुभूति तक है । वैयक्तिक राग - विराग हो या निर्वैयक्तिक आत्म संघर्ष ---- कविता की एक ही शर्त है -- उसका भोग की स्थिति में आकर तदनुरूप आक्षरिक संरचना में ढल जाना । मानवीय चेतना की कालयात्रा के साथ आवेग - सम्भवा कविता अपने अनुकूल भाषा का निर्माण कर लेती है। अभिव्यक्ति की छटपटाहट शब्दों के सांचे की निर्मिति के लिए उत्तरदायी है । अन्ततः कविता भावों का निवेश है, विचारों का उपनिवेश नहीं।

द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद और वैज्ञानिक युक्ति वाद के जीवन - दर्शन से परिस्फूर्त और वर्ग - संघर्ष की चेतना से अनुप्राणित प्रगतिशील कविता पर जब यह आरोप लगा कि वातानुकूलित कक्ष में बैठ कर पारकर पेन से मजदूरों पर कविता लिखी जा रही है और कविता का परिसर लाल झंडा और भैंसा गाड़ी से भर गया है तो नयी चेतना के साथ नयी राहों का अन्वेषण आरम्भ हुआ । पुराने प्रतीकों और अप्रस्तुत विधान को छोड़कर नए उपमानों का प्रयोग किया जाने लगा ----- अगर मैं तुझको/ ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका अब नहीं कहता/ या शरद के भोर की नीहार - न्हाई कुंई, टटकी कली चम्पे की, वगैरह तो

**नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है,**
**या कि मेरा प्यार मैला है।**
**बल्कि केवल यही/ ये उपमान मैले हो गए हैं।**
**देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।**
**कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।**

इसलिए अज्ञेय अपनी प्रेयसी को " दोलती कलगी छरहरी बाजरे की " कहना अधिक पसन्द करते हैं। यहाँ प्रेम पुनर्नवा होकर उपस्थित है, किन्तु वह यथार्थ वादी धरातल पर अवस्थित है । तारिका या चम्पे की कली को अपदस्थ करके भूख के शमन के उपादान बाजरे को सौन्दर्य - बोध का रूपक बनाने के मूल में बदली हुई सौन्दर्य - दृष्टि मौजूद है। बासन लोकभाषा का प्रचलित शब्द है, ठीक घिसे हुए बर्तन की तरह। देववाणी संस्कृत से बरते जा रहे उपमान अति प्रयोग के कारण अपनी संप्रेषण - क्षमता खो चुके हैं। किन्तु इन कविताओं पर अति प्रयोग का आरोप लगा और इन्हें प्रयोगवादी संज्ञा दी गई। अज्ञेय ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि प्रयोग का कोई वाद नहीं होता। क्षणबद्ध वैयक्तिक अनुभूति की प्रामाणिकता को प्रस्तावित किया गया। डॉ नामवर सिंह कहते हैं कि " जिस प्रकार कल्पना प्रवण अन्तर्दृष्टि छायावाद की विशेषता है और अन्तर्मुखी बौद्धिक दृष्टि प्रयोगवाद की, उसी तरह सामाजिक यथार्थ - दृष्टि प्रगतिशील कविता की विशेषता है। " जाहिर है कि प्रयोगवाद को सिर्फ रूपवादी काव्य - प्रवृत्ति में अपघटित नहीं किया जा सकता। और यह भी कि प्रगति और प्रयोग तो हर काल में होते रहे हैं। तथा दोनों की अन्तर्धारा समकालीन हिन्दी कविता में भी प्रवहमान है । हर युग अपनी नवीनता लेकर आता है और चलते - चलते अगले युग के लिए कुछ दिशा - संकेत और विरासत छोड़ कर पुरानों में शामिल हो जाता है, इतिहास बन जाता है। जिसे हम विद्रोह कहते हैं, वह प्रकारान्तर से परम्परा का विकास भी होता है। परम्परा के ऋक्थ से ही वर्तमान का निर्माण होता है। प्रतिक्रिया क्रिया को समाप्त नहीं कर देती, केवल उसे कुछ समय के लिए अवरुद्ध या दिशान्तरित कर दिया करती है।

सन् 1943 ई. में अज्ञेय के संपादन में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवाद का प्रारम्भ होता है और सन् 1951 में उन्हीं के संपादन में 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ उसका अन्तर्भाव नयी कविता में हो जाता है । डॉ जगदीश गुप्त के संकलन 'नयी कविता' के प्रकाशन के साथ ही इस काव्य धारा को यह नई संज्ञा मिली। द्वितीय विश्वयुद्ध में हिरोशिमा और नागासाकी की भयावह विभीषिका ने सम्पूर्ण विश्व को झकझोर कर रख दिया और मानवता के सम्मुख व्यापक अस्तित्व - संकट खड़ा हो गया। जैसे मंझधार में डूबती नौका पर बैठा हर व्यक्ति खुद को बचाने के लिए बेचैन

हो उठता है। इस त्रासदी ने मनुष्य को व्यक्ति वादी बना दिया। शरीर पूरे सृष्टि की नाभि है। इसके संहार की आशंका से निराशा, कुंठा, एकाकीपन, व्यर्थता बोध, क्षणवाद और घोर असामाजिक चिन्तन का प्रादुर्भाव हुआ। अस्तित्व वादी दर्शन अस्तित्व में आया। कीर्केगार्ड, हैडगर, काफ्का और ज्यां पाल सार्त्र आदि इस वैचारिकी के प्रवक्ता थे। इस विचार धारा के अनुसार मानवीय अस्तित्व आत्यंतिक है। मनुष्य ही मूल्यों का आविष्कार कर्त्ता है, ईश्वर नहीं। पाप भावना एक स्वत: आरोपित निर्णय है। व्यक्ति अपने कर्मों के लिए किसी भी संस्था के सम्मुख उत्तर दायी नहीं है। फलतः इस दर्शन की छाया में विकलांग मानवता और यौन - विकृतियों का अति यथार्थ वादी चित्रण शुरू हो गया और सार्त्र ने भी नपुंसक और अधम चरित्रों की सृष्टि की। मानव जीवन के उज्ज्वल पक्ष पर इनकी दृष्टि नहीं गई। इसीलिए यूरोप में इसे नरकोन्मुखी दर्शन कहा गया। हिन्दी कविता में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। अज्ञेय की 'सावन मेघ' शीर्षक

कविता में यौन प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं -----

**सो रहा है झोंप अंधियाला**

**नदी की जांघ पर।**

शमशेर के यहाँ भी यौन - बिम्ब संलक्ष्य हैं -----

**पपड़ीले पत्थर की पीठ पर**

**सांप केंचुली उतारता रहा।**

इसके मूल में फ्रायड का मनोविश्लेषण वाद भी सक्रिय है। जिसकी मान्यता है कि कला और स्वप्न की प्रक्रिया एक जैसी होती है। इसलिए यह अवचेतन की आवाज को प्रमुखतः मर्यादा और विवेक के शासन से मुक्त होकर मूर्त करता है। समस्त वर्जनाओं की अवहेलना करते हुए स्वानुभव को व्यंजित करने के उपक्रम में विशृंखल स्वप्न परक बिम्बों की सृष्टि शुरू हुई। मुक्त आसंग, रागात्मक पौर्वापर्य (इमोशनल सीक्वेंस) और स्वत:चालित लेखन की प्रविधियों का प्रयोग किया जाने लगा। फन्तासी का अभिनिवेश मुक्तिबोध की कविताओं में बड़े ही गहन और उदग्र रूप में हुआ है। फैन्टेसी उनकी पहचान बन गई है और यहाँ कल्पना सच से अधिक सच का बयान करने में सक्षम हो गई है। किन्तु नकेनवाद ने अति प्रयोग धर्मिता के कारण पूर्ण निरंकुशता, यौन - अराजकता और सर्व तंत्र स्वतंत्र व्यक्ति वाद को पुरस्कृत किया। बिहार की त्रयी ने प्रयोगवाद की प्रतिस्पर्धा में प्रपद्यवाद को प्रचारित करते हुए स्वयं को असली प्रयोगवादी घोषित किया। नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार तथा नरेश के नामों के प्रथमाक्षरों से इस अभिधान की रचना हुई थी। किन्तु कविता के स्थान पर स्वयं को प्रतिष्ठित करने के कारण यह आन्दोलन रुचि - वैचित्र्य का एक नमूना बनकर रह गया। अज्ञेय के द्वारा संपादित तीनों सप्तकों के माध्यम से नयी कविता का एक स्वरूप निर्मित हो गया। अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह,, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। नई कविता अपने युग की आशा - आकांक्षाओं के अनुरूप कतिपय कालजयी रचनाएँ दे चुकी है। अन्धा युग, अंधेरे में, असाध्य वीणा, आत्मजयी, एक कंठ विषपायी और संशय की एक रात जैसे प्रबन्ध काव्य अपने युग के संश्लिष्ट सौन्दर्य बोध एवं समकालीन अन्तर्द्वन्द्व को भलीभाँति व्यक्त करते हैं और एक समवेत सभ्यता - समीक्षा या सभ्यता विमर्श प्रस्तुत करते हैं। परवर्ती काल में या नई सदी में कुंवर नारायण ने "बाजश्रवा के बहाने", नरेश मेहता ने 'महाप्रस्थान' और केदारनाथ सिंह ने 'तालस्ताय और साइकिल' जैसे क्लासिक ग्रन्थों की रचना की। नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल ने भी प्रतिरोध के इस सांस्कृतिक समारोह को समृद्ध किया।

निष्कर्षत: अज्ञेय प्रयोगवाद या कि नई कविता के प्रवर्तक और प्रतिष्ठाता माने जाते हैं। युगीन मानसिक परिवर्तन के सन्दर्भ में रचनाशीलता के नये तेवर की उनमें गहरी समझ है। परम्परा के निषेध के स्थान पर उसे युगानुरूप नया मोड़ देने की उनमें अपूर्व प्रतिभा है। रसवाद को उन्होंने रागात्मक सम्बन्धों के बदलाव और द्वन्द्वात्मक सन्दर्भों की प्रासंगिकता प्रदान की। हिन्दी कविता को नए से नए अर्थ - सन्दर्भों और अभिव्यक्ति - रूपों तक ले जाने में वे सदैव अग्रणी रहे हैं। शब्दों के सूक्ष्म अर्थ - संवेदनों की उनमें गहरी समझ है और बड़ी सटीक और तराशी हुई शब्द - योजना कविताओं में मिलेगी। सांस्कृतिक गरिमा से उद्भासित उनके काव्य - संसार में मिथकों का सौष्ठव पूर्ण उपयोग हुआ है। औदात्य उनकी कविता की पहचान है। व्यष्टि और समष्टि के बीच एक सन्तुलित समीकरण की खोज करने वाले अज्ञेय में एक विशिष्ट प्रकार की कास्मिक चेतना लक्षित होती है। पाश्चात्य उत्क्रान्तियों के प्रति उदार अज्ञेय की रचनाशीलता का परिवेश सर्वथा भारतीय है। वे सही अर्थों में एक बड़े यायावर हैं। भारतीय आधुनिकता उनका इष्ट है, प्रयोग नहीं।

**साठोत्तरी अथवा समकालीन कविता ----------- (2)**
कविता अनुभूति की आत्मसंघर्षोत्तर अभिव्यक्ति है। कवि का स्वानुभव उसके अपने परिवेश के अन्तर्विरोध से उद्भूत होता है। आवेगाकुलता के साथ ऐतिहासिक समझ की समावेशिता और अन्तर्ध्वनन की तीव्रता अच्छी कविता के लक्षण हैं।

साठोत्तरी कविता वस्तुतः कालांकित कविता है। बीसवीं शती के सातवें दशक की कविता अपने काल की मार से अभिशप्त है। राजनीति और देश की सार्वत्रिक परिस्थितियों के घातक दबाव में आलोक मंजूषाएं मुरझा गईं और मर्यादा और आस्था का खोखला पन प्रकट हुआ। आदर्श, स्वप्न और दर्शन का कोई सम्मोहन शेष नहीं बचा था। बड़े बड़े आयोजनों का आकर्षण समाप्त हो गया था और अनावृत वास्तविकता एक नयी अभिव्यक्ति की मांग कर रही थी। भाषिक टकसालीपन और दार्शनिक कथ्य के व्यामोह को छोड़कर सीधे सीधे अपने यातना - दंश के तीक्ष्ण अनुभव को एक बेलाग बेलौस भाषा में निरूपित किया गया, जो यथास्थिति के नियामकों को चोट पहुंचा सके। सन् 1962 ई. में भारत के उत्तराखण्ड की अनेक सीमा - चौकियों का चीन के अप्रत्याशित आक्रमण से दयनीय पतन वस्तुतः चीन द्वारा तिब्बत के अन्याय पूर्ण विस्तार वादी अधिग्रहण से भी न चेतने वाले नेहरू - युग के पंचशील के हवाई आदर्शों की समूचे राष्ट्र को झकझोर देने वाली पराजय और यथार्थ वादी परिप्रेक्ष्य की स्थापना के नए युग की शुरुआत थी। यह एक प्रतीकात्मक घटना थी, जिसके दूरगामी परिणाम सामने आए। नयी कविता की आत्मसमर्पणी निराश मुद्राओं में संघर्ष पूर्ण समय के समानांतर चलने की शक्ति नहीं थी। जड़ता के विरुद्ध सक्रिय और संस्फूर्त होकर अपने समय के संघर्ष में कविता के स्तर पर हिस्सेदारी का नाम ही समकालीन कविता है। समकालीन कविता के दिक् और काल आध्यात्मिक कुहाजाल से मुक्त होकर जिन्दगी की ठोस जमीन पर आधारित होते हैं। इसलिए समकालीन कविता अज्ञेय के बजाय निराला और मुक्तिबोध से प्रेरणा ग्रहण करती है। निराला की क्रान्तिकारी कविता यथार्थ का तटस्थ दर्शन और पंत की तरह अनुभूति का दार्शनिकीकरण न करके यथार्थ के तीखे दर्द को जी कर तथा कला के सारे कृत्रिम उपकरणों को फेंक कर भोक्तृत्व के गर्भ से फूटने वाली एक नई भाषा का निर्माण करती है। धूमिल भी शोषक

शोषित सम्बन्धों की तल्ख पीड़ा को मारक अभिव्यक्ति देते हुए एक सूक्ति गढ़ते हैं -----

**लोहे का स्वाद लुहार से मत पूछो,**
**उस घोड़े से पूछो,**
**जिसके मुंह में लगाम है।**

बेशक धूमिल समकालीन कविता के केन्द्र बन गए और सावधान शिल्प की नई कविता की बिम्ब - बहुलता के विरुद्ध विद्रोह और सपाटबयानी के अतिरिक्त आग्रह के बावजूद उन्होंने सान्द्र बिम्बों की सृष्टि की तथा अकविता की बेलगाम संरचना को स्वस्थ दिशा दी -----

**ये जिसकी पीठ ठोंकते हैं,**
**उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो जाती है।**
**ये मुस्कराते हैं और**
**दूसरे की आँख में झपटती प्रतिहिंसा**
**करवट बदल कर सो जाती है।**

अकाव्यात्मक शब्दों के द्वारा काव्य - सृजन और समय के विपर्यय को नए मुहावरे में निबद्ध करने में कुशल धूमिल स्व और पर की विभेदक रेखा को ठीक से पहचानते हैं -----

**वह हंसता है ऐसी हंसी**
**कि दिल दहल जाता है।**
**मुझे लगा --- आवाज किसी जलते कुएँ से आ रही है।**
**एक अजीब सी प्यार भरी गुर्राहट,**
**जैसे कोई मादा भेड़िया**
**अपने छौने को दूध पिला रही है,**
**साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है।**

प्रेम और हिंसा का यह संश्लेष हमारे समय का रूपक है। धूमिल की कविता में सिर्फ बड़बोले पन अथवा इतिहास - ग्रस्तता को देखने वाले लक्ष्य नहीं कर पाते कि उनकी कविता व्यवस्था के प्रति अपना स्टैंड लेने में मात्र टीकाकारिता तक सीमित नहीं रहती। वह आक्रामक भाषा और बेहद असहिष्णु त्वरा वाले काव्य - मुहावरे तक पहुँच जाती है। उनकी कविता समकालीन जीवन के अन्तर्विरोधों का तीव्रतम भाषा में उद्घाटन करती है। गाँव से नगर और संसद से सड़क तक फैले यथार्थ के विभिन्न स्तरों को तोड़ती - खोलती वह निहित स्वार्थ परता तथा सत्ता - लोलुपता के विरुद्ध विद्रोह की कविता बन जाती है। वैसे समकालीन कविता को आकार देने वाले अधिकांश कवि नई कविता के दौर में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुके थे। श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, विजय देव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, दुष्यन्त कुमार और केदारनाथ सिंह आदि कवि नयी कविता और समकालीन कविता के बीच सेतु - निर्माण का दायित्व वहन करते हैं। इसलिए नयी कविता की अनेक प्रवृत्तियाँ साठोत्तरी कविता में भी किंचित् विकसित या परिवर्तित रूप में विद्यमान रही हैं। इसीलिए नयी कविता से अपना पार्थक्य सूचित करने के लिए और अपनी पहचान संस्थापित करने के लिए लगभग पचास काव्यान्दोलन सामने आए। अकविता, अन्यथा वादी कविता, युयुत्सावादी कविता,

प्रतिबद्ध कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, सीमान्तक कविता, भूखी पीढ़ी की कविता, विद्रोही कविता आदि सभी आन्दोलनों के अलग अलग घोषणा - पत्र, पत्रिकाओं के साथ ही काव्य - संकलन सामने आए। इन सबका पर्यवसान समकालीन कविता में उसी प्रकार हो गया, जैसे छोटी-छोटी नदियों के मिलने से एक महानदी का निर्माण हो जाता है। इसीलिए उसमें तलछट भी कम नहीं है। सातवें दशक की कविता भटकाव की कविता है। भवानी प्रसाद मिश्र उसे "किसिम - किसिम की कविता" का शीर्षक प्रदान करते हैं। आठवें दशक तक आते - आते वह एक दुर्निवार प्रवाह का रूप ले लेती है। अकविता की उद्देश्य हीनता और उसके निषेध की एकान्तता के विरुद्ध समकालीन कविता में समूची व्यवस्था को मानो चौराहे पर खड़ा करके नंगा कर देने और एक नई व्यवस्था की मांग करने की आवाज बेहद तीव्र होकर सुनाई पड़ने लगी। यह लक्ष्मी कान्त वर्मा की 'ताजी कविता' की नंगी भाषा की मांग नहीं है, जिसमें काव्य शील को जान बूझ कर तोड़ देने का उपक्रम शामिल है। वस्तुस्थिति पर निरा आक्रोश और व्यंग्य करने में भाषा प्रायः सपाट, अनुभव - संसार उथला और कविता लचर बनकर रह जाती है। अशोक वाजपेयी के शब्दों में "ये कविताएँ अमानवीय करण के विरुद्ध चीख नहीं, उसका उत्सव मनाती किशोर उत्साह की गीतकल्पी रचनाएँ हैं। अकवि साक्षात्कार के कवि भी नहीं हैं। उनकी बुनियादी मुद्रा केन्द्र हीन है। क्योंकि वह किसी स्पष्ट मानव - सम्बन्ध या सामाजिक सच्चाई को सम्बोधित न होकर सभ्यता, संस्कृति, शहर जैसे सामान्यीकरण की ओर जाती है।" इसके विपरीत समकालीन कविता आदमी को जानवर की जिन्दगी और कुत्ते की मौत तक पहुंचाने वाले अपराध और षड्यंत्र की जिम्मेदारी तय करती है। सत्ता का हवाई निरोध करके सत्ता एवं लक्ष्मी - प्रतिष्ठानों से गंठजोड़ की विडम्बना से वह बखूबी परिचित है। इसलिए पूंजी और राजनीति के पायों पर टिके एक विराट शोषण - यंत्र से टकराव इनका लक्ष्य बन गया। समकालीन कवि हिन्दी प्रदेश के गाँव - कस्बे और छोटे जनपदों के जिस निम्न - मध्यम वर्ग से निकल कर महानगरीय विशिष्ट वर्ग में आए थे, वहाँ से उन्हें साफ दिखलाई पड़ा कि जनतंत्र का जो विराट भवन स्वतंत्रता के बाद खड़ा हुआ, वह भले ही बहुमत के नाम पर प्रतिष्ठित हुआ हो, किन्तु वह था अल्पतंत्र का ही ऐश्वर्य - प्रसार जो कल्याण कारी राज्य के नाम पर गरीबों को और गरीब तथा अमीरों को और अमीर बनाने की भयावह परिणति की ओर अग्रसर था। समकालीन संवेदनशीलता जब यथार्थ की मार से पैनी हुई तो वह पौराणिक आख्यानों, बड़े बड़े सांस्कृतिक प्रश्नों और दार्शनिक प्रतिपत्तियों को छोड़कर एक नए भाषिक तेवर में सामने आई। यथार्थ की भाषा यथार्थ से बचाव की भाषा नहीं होती। इसलिए छंद - लय से अनुशासित काव्याभिव्यक्ति, शिष्ट और कोमल कांत पदावली, आदर्श और औदात्य से निर्मित काव्य - वस्तु, प्रतीकों से निर्मित और बिम्बों से संग्रथित काव्य - भाषा को छोड़कर समकालीन कविता सामान्य प्रचलित शब्दों को बातचीत के ढांचे में स्वीकार करके खीझ, गुस्सा, आक्रोश और विद्रोह को तीव्रता से व्यक्त करने लगी। व्यंग्य कविता का प्राण हो गया। किन्तु आज व्यंग्य के विस्तार में व्यंग्य अन्तर्धान हो गया और उसमें वाच्यार्थ फैल गया है। इसलिए केदारनाथ सिंह आक्रोश के इस प्लावन को प्रश्नांकित करते हैं -----

**अब तुम अपने गुस्से को निकाल कर**
**हथेली पर रख सकते हो,**
**देख सकते हो कि उसमें कितना तेजाब**
**और कितनी बाजार की धूल है।**

फैशनी और फार्मूला बद्ध कविताओं ने विद्रोह को रस्मी बना दिया है और उसकी धार कुंद हो गई है। व्यंग्य का हथियार भी भोंथरा हो गया है। केदारनाथ सिंह में यथार्थ की मजबूत पकड़ और उसके विभिन्न सन्दर्भों को सफाई और सुरुचिपूर्ण तरीके से कहने का बेहद सधा कौशल है। अस्सी के दशक में या फिर उसके आसपास अरुण कमल, राजेश जोशी, ज्ञानेन्द्र पति, मंगलेश डबराल,उदय प्रकाश, कुमार अम्बुज, विष्णु खरे, चंद्रकान्त देवताले, ऋतुराज, लीलाधर जगूड़ी, अशोक वाजपेयी आदि कवियों ने प्रतिरोध का एक संयत मुहावरा अर्जित किया। और नई सदी में मनोज झा, आशुतोष दुबे, अरुण श्री, सुशोभित सक्तावत एवं प्रांजल राय की एक बिल्कुल नई पीढ़ी दाखिल हो चुकी है, जो वी एस नायपाल, एडवर्ड सईद और नोम चाम्सकी के चिन्तन को आत्मसात करते हुए वैश्वीकरण, बाजारवाद, आर्थिक उदारीकरण, अतीतगामिता, अतिवादी कट्टरपंथी सोच और सभ्यताओं के टकराव की विडम्बना तथा साइड इफेक्ट्स को मूर्त करने की कोशिश कर रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी, सभ्यता - समीक्षा, जादुई यथार्थ, साइबर क्राइम, आभासी दुनिया और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के सामाजिक प्रभावों की मीमांसा इनका विषय है। अनामिका, गगन गिल, नीलेश रघुवंशी, अनीता वर्मा, बाबुषा कोहली, पल्लवी त्रिवेदी, निर्मला पुतुल आदि कविता के मुख्य स्त्री - स्वर हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, मलखान सिंह, पुरुषोत्तम सत्य प्रेमी दलित - चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। जगदीश नारायण श्रीवास्तव के अनुसार "समकालीन कविता उतनी चिन्तन की नहीं, जितनी चिन्तात्मक काव्य - परिणतियों की

संज्ञा है। " उनके विचार से सभी समकालीन कवियों का अलग व्यक्ति - वैशिष्ट्य है ---- "रघुवीर सहाय की यथार्थ की दुभाषिए जैसी व्यंग्य गर्भ सादगी, सर्वेश्वर दयाल की आवेग पूर्ण तल्खी और कभी कभी आक्रामक तीव्रता, श्रीकांत वर्मा की बेढब तुकों और बेतुकों में विडंबित यथार्थ की प्रवाह पूर्ण अभिव्यक्ति, जगदीश चतुर्वेदी में बड़बोले पन की निषेध धर्मिता, सौमित्र मोहन की आवेग रहित विरूपीकरण जन्य व्यंग्य गर्भता, राजकमल चौधरी की यथार्थ के व्यंग्य गर्भ अनावरण से फूटती तिक्त उदासीनता, धूमिल की चुनी कसी सूक्ति मूलक पदावली की आक्रामकता, लीलाधर जगूड़ी की व्यंग्य गर्भ विस्फोटक भाषा समकालीन कविता की प्रौढ़ता का परिचायक है। मूर्ति - ध्वंस और मूल्य - ध्वंस, युयुत्सावादी चेतना, व्यर्थता बोध, एकाकीपन की अनुभूति, भोक्तृत्व की संवेदना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और भीड़ का आतंक समकालीन कविता की अन्य विशेषताएं हैं ----

शोर की सीढ़ियों से उतरता सन्नाटा, किन्हीं बेपनाह सच्चाइयों के मुंह पर चांटा। **–कन्नौज, 98396 11435**

आलेख

# हेमंत स्मृति कविता सम्मान 2024 अरुणाभ सौरभ को

एक प्रेस विज्ञप्ति में पुरस्कार की घोषणा करते हुए संस्था की संस्थापक अध्यक्ष संतोष श्रीवास्तव ने कहा हेमंत फाउंडेशन (पंजीकृत) द्वारा आयोजित वर्ष 2024 का हेमंत स्मृति कविता सम्मान संभावनाशील युवा कवि अरुणाभ सौरभ को उनके कविता संग्रह" मेरी दुनिया के ईश्वर" के लिए दिया जाना तय हुआ है। पुरस्कार फरवरी 2025 को भोपाल में आयोजित समारोह में प्रदान किया जाएगा।

पुरस्कार की संयोजक, संस्था की संस्थापक सचिव डॉ. प्रमिला वर्मा ने बताया-"

संग्रह की कविताएं मन को उद्वेलित करती हैं ,और उनकी संवेदना हर दृष्टि से निथर कर भाषा में विन्यस्त होती जाती हैं, और प्रत्येक कविता अपने अर्थों में एक नया संसार रचित करती हैं। कवि का स्वीकार्य ईश्वर के प्रति-

मेरी एक दुनिया है
जहाँ ईश्वर की उपस्थिति चहुँओर बताई गई है
मेरी दुनिया को सँवारने - निखारने की जवाबदेही
मनुष्य की नहीं ईश्वर की है
कई ईश्वर उभरकर आ रहे रोज-रोज
इस कविता में मैं हूँ
मेरी दुनिया है और मेरा ईश्वर बहुवचन में...

कवि के उज्जवल भविष्य के लिए शुभकामनाएं।

हेमंत फाउंडेशन पिछले 23 वर्षों से साहित्य में अपनी पारदर्शिता को लेकर अलग पहचान बनाए हुए है।

अरुणाभ सौरभ

23 वां 'हेमंत स्मृति कविता सम्मान' अरुणाभ सौरभ को प्रदान करते हुए संस्था गर्व का अनुभव करती है।एवं अरुणाभ जी को बधाई देते हुए उनके उज्जवल भविष्य की कामना करती है।

पुरस्कार के सम्माननीय निर्णायक हैं डॉक्टर संजीव कुमार दिल्ली, राजेंद्र गट्टानी भोपाल एवं नीलिमा रंजन भोपाल पुरस्कार स्वरूप पुरस्कार राशि एवं स्मृति चिन्ह समारोह पूर्वक प्रदान किया जाएगा

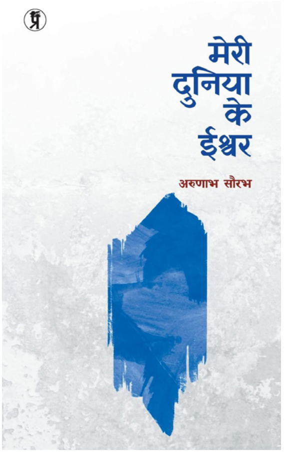

**प्रस्तुति : संतोष श्रीवास्तव, संस्थापक/अध्यक्ष**
**–भोपाल, मो. 97690 23188**

आलेख

# आज का अनाज और कृषक रूदन

प्रियंका साव

'का बरसा जब कृषि सुखानी'- इस लोकोक्ति को याद दिलाते हुए मिथिलेश्वर जी ग्रामीण जीवन और कृषक समाज का संवेदनशील चित्रण करते हुए अपने इस उपन्यास ' तेरा संगी कोई नहीं ' में कृषि व्यवस्था पर व्यंग्य करते दिखाई देते है। सच पुछा जाय तो भारत की कृषि व्यवस्था की दुर्गति होने में शहरी सभ्यता और वैज्ञानिक तकनीकी विकास का सबसे बडा हाथ रहा है। वो कहा जाता है ना कि जो दशा बिना हाथ के व्यक्ति की रहती है और वह किसी काम का नही रहता, वही दशा आज के किसानो की हो चुकी है। मिथिलेश्वर अपने सातवें उपन्यास ' तेरा संगी कोई नहीं ' में आज के कृषक की व्यथा और उसकी त्रासदी दिखलाए है। उनका इसके पूर्व के उपन्यास ' यह अंत नहीं ' में भी ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित और शहरी राजनीति का चित्रण था। कुल मिलाकर देखा जाय तो वरिष्ठ कथाकार अब तक के अपने उपन्यासों में एक नवीन विषय को उभारे है, आज के युग की भारतीय कृषि व्यवस्था और नित् परिवर्तन हो रहे आर्थिक नीतियाँ एक मध्यमवर्गीय कृषक को किस प्रकार मानसिक द्वन्द्ध में डालती है और इसका परिणाम किस प्रकार दु:खद स्थिति में पहुँचता है, इसका चित्रण सहज व सरल भाषा शैली में प्रस्तुत हुआ है।

उपन्यास ' तेरा संगी कोई नहीं ' का नायक एक कृषक है, बिहार प्रांत के भोजपुर जिले में पडनें वाला बलिहारी गाँव को केन्द्र में रखकर उपन्यास का कैनवास रचा गया है। उपन्यास एकरेखीय नही चला। अपने आसपास की इतर घटनाओं, पात्रों से कथा में क्रमबद्धता रही और शिल्प को धार प्रदान भी किया गया। उपन्यास में वहाँ के खेत-खलिहान, कुआँ, रोजमर्रा की नित्यक्रिया-कर्म, वहाँ के दालान में बैठक, समस्या एवं समाधान, एक समग्र वातावरण का शैलीगत रचाव। किसान समुदाय के भारतीय आर्थिक गतिविधियाँ और इन सब का कृषक समाज पर प्रभाव आदि भी जुडा है। यही कारण है कि उपन्यास के अधिकांश पात्र तत्कालिक उभरती स्थितयों को झेलते, सहते और विरोध करते हुए दिखता है और मुख्य पात्र ही केवल के रूप में स्वाभिमानी, साहसी, सहनशील और जवाबदेही के रूप में अपने टूटते-उखडते वर्तमान को सुवासित करने की चेष्टा करता हैं। जहाँ तक उपन्यास के सृजनात्मकता का प्रश्न है तो यह उपन्यास सर्वव्यापी सार्वभौमिक विचारधारा को केन्द्र में रखकर आगे बढा है। स्थानीयता को प्रमुखता देता हुआ यह उपन्यास किसानों द्वारा ली गई आत्महत्याओं और उनके जीवन त्रासदी पर केन्द्रित है। जहाँ उपन्यास में देहाती समाज के साथ शहरी चकाचौंध को भी पाठकों के समक्ष रखा गया है, वहीं कृषक, कृषक-मजदूर और उनसे सम्बन्धित समस्याओं को भी मूल वैश्विक चिंतन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास बडे ही सहज ढंग से बलिहारी गावँ के बलेसर (मुख्य पात्र) के 'बत्तीस बिगहवा' जमीन से शुरू होता है। रोज सुबह की तरह बलेसर अपने ' बत्तीस बिगहवा ' की ओर जाते है। कथ्य का पूरा केन्द्रीकरण एक परिवार है और उस परिवार का हर सदस्य एक दूसरे को प्रभावित करते दिखाई दिये है। कहानी की शुरूवात बलिहारी के पश्चिमी बधार में पास के नहर के सरकारी पानी की चोरी के काण्ड में पास के सवारी गावँ के किसानों के हाथों हो जाती है। वह कहते है न 'जल ही जीवन है', पानी की समस्या को लेकर उठी समस्या, परन्तु इसके साथ ही लेखक ने अपने समय के विराट प्रश्नों को भी जोड़ दिया है। उपन्यास का मुख्य पात्र बलेसर कथा के आरम्भ से ही अपनी पुश्तैनी जमीन को लेकर चिंतित दिखाई दिया है और उसके इस चिंता का कारण उसके तीनों पुत्र ही है। मुख्यमत्रीं सचिवालय में सहायक की नौकरी करने वाला बड़ा पुत्र कुलराखन का प्रभाव उसके दोंनों छोटे भाइयों मनराखन और जगपूरन पर पड़ा, वे दोनों भी शहर जाकर शिक्षा किये और नौकरी भी। शहरी सभ्यता, रहन-सहन और भौतिक सुख-सुविधाओं की चर्चा करता हुआ जगपूरन अपनी माँ से कहता है - हमारे गाँव की तुलना में वहाँ शहर का जीवन बहुत अच्छा है माँ। यहाँ जैसी उबड़-खाबड़ टूटीं हुई सड़के नही चमचमाती सडकें

है जिस पर फर्राटें से सवारियाँ दौड़ती रहती है। वहाँ जब जिस चीज की जरूरत पड़ जाय, निकट के मार्केट में सब उपलब्ध। (पृ. 17) आधुनिकता और शहरी चकाचौंध ने ग्रामीण इलाकों की नवयुवा पीढी को इस प्रकार से अपने मोहजाल में फँसाकर रखा है कि वह शहरी सभ्यता को अपनाने में तथा शहरी काम-काज चाहे वह छोटा ही क्यों न हों, करने को राजी है, युवा पीढीं का अपनी पारम्परिक कृषि कर्म को छोड़कर पलायन करना, कृषक समाज के लिए अभिशाप के रूप में बन गया है। मिथिलेश्वर ने ‘ तेरा संगी कोई नहीं ’ उपन्यास के जरिये जिन कृषि सम्बन्धी समस्यओं को उभारा है वह शायद पूर्व के किसी भी उपन्यास में सम्भवत: हो। उपन्यास की सबसे बड़ी विडम्बना इस बात में है कि एक ऐसा स्वाभिमानी कृषक जो अपनी पुत्री के विवाह के लिए अनेक प्रकार से तरकीबें लगाते है, उनका अपनी बात मनवाने के लिए बलेसर पर मानसिक दबाव पूरा रहता है।

कथ्य में गाढापन तो किसानों, उनके फसलों और कृषि व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याओं को लेकर अनेक प्रकार की असुविधाओं से गुजरना पड़ा था, इस वर्ष तो पानी और खाद को लेकर सबसे बड़ा प्रश्न उठ गया था। ग्रामीण इलाकों में बिजली की समस्या उभर कर आती है। यह सिर्फ बलेसर की समस्या नही थी वरन् गाँव के प्राय: सभी किसानों की समस्या बन गई थी, इन सब के समाधान के लिए गाँव में दालान पर बैठक का भी निर्धारण कर दिया गया था। लेखक की स्थापना है कि दुनिया की वर्चस्ववादी शक्तियाँ हमेशा से ही गरीबों-दलितों के विनाश के मसलों पर सक्रिय रही है, उनके लिए जनकल्याण तो महज ढोंग और दिखावा ही रहा है। जरिया चाहे कोई भी सरकारी कर्मचारी या उच्च पद में प्रतिष्ठित व्यक्ति अपने ओहदे का गलत फायदा उठाकर मध्य-निम्नवर्ग को हमेशा से ही प्रताड़ित करता आया है। उपन्यास के एक अंश में हर किसानों ( किसान पात्रों ) के मत व विचार को बखूबी रखने में मिथिलेश्वर कोई कसर नही छोड़ें।

स्पष्ट रूप से कहा जाय तो यह उपन्यास का भारतीय आर्थिक नीतियों पर तीखी टिप्पणी है और इसमें बहुत वजन भी है। सिचांई से सम्बन्धित समस्या विशेषत: खाद और पानी को लेकर जो गाँव में सामूहिक निर्णय लिया गया, उससे बलेसर थोड़े आश्वस्त हो गये थे, परन्तु एक समस्या और गम्भीर रूप से भयावह होती जा रही थी, वह यह थी किसान और खेत-मजदूरों का शहरों के तरफ पलायन और यह सब नक्सलवाद का ही अभिशाप था। गाँव के मास्टर साहब जिनकों समाचार पत्र आदि से जानकारियाँ भी मिलती थी, वे भारत की कृषि-व्यवस्था के सम्बन्ध में दालान पर ग्रामीण किसानों के लिए एक सर्वेक्षण भी प्रस्तुत करते है – “ हमारे देश की चौपट होती कृषि व्यवस्था को लेकर पिछले दिनों एक समाचार पत्र ने यह आकड़ाँ प्रकाशित किया कि वर्ष 1995 से 2015 तक के बीच गिरते हुए जलस्तर, बढती महँगाई, सूखते कुएँ एवं तालाब तथा कीड़ों से फसलों के भारी नुकसान और क्षति को लेकर भारत में 2,96,3,48 (दो लाख छियानबे हजार तीन सौ अड़तालीस) किसान आत्महत्या कर चुके है। ” ( पृ.- 58 )

सचिवालय में नौकरी प्राप्त करने के उपरान्त बलेसर का बड़ा पुत्र आये हुए अनेक विवाह प्रस्तावों को टालने लगता है और सचिवालय के किसी आप्त सचिव की पुत्री से विवाह कर लेता है। बलेसर ने कुलराखन का विवाह दबंग बादल सिंह की बेटी से तय किये रहते है और रिश्ता तोड़ने का मुआवजा बलेसर खेत को दावँ में लगाकर चुकाते है। बादल सिंह रिश्ता टूटने का बदला बलेसर के बत्तीस बिगहवा खेत में आग लगाकर उनके धान के फसल को बर्बाद करके लेता है। वहीं मनराखन और जगपूरन भी अपने बड़े भाई कुलराखन के नक्शे कदम में चलते हुए अपनी इच्छानुसार प्रेम कर लेते है।

परिवार में दो पीढियों के वैचारिक मतभेद और उसका परिणाम अत्यन्त सोचनीय ढंग से होता है। आज के युग की युवा पीढीं अधिक सजग व जागरूक होने के साथ मानवीय मूल्यों को अपने पैरो तले कुचलती हुई आगे अग्रसर हो रही। अधुनातन चिंतन और वैज्ञानिक जीवन दृष्टि, आधुनिकीकरण, औधोगिकरण एवं उच्च शैक्षिक स्तर के प्रभाव में मानवीय सम्बन्धों के धरातल में परिवर्तन आया है, जिसका रूपायन इस उपन्यास में मिथिलेश्वर ने अत्यन्त सजीवता या यों कहें एकदम जेन्यूइन ढंग से किया है।

175 पृष्ठों का यह उपन्यास छोटे-छोटे उपकथाओं को लेकर गढा हुआ है और मिथिलेश्वर ने कुछ इस प्रकार कथा-विस्तार पर समय की सापेक्षता को देखते हुए रचना की है कि जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि नवीन प्रयोग की दृष्टि से यह सार्थक रूप से सफल उपन्यास है।

रचना की सफलता उसके किरदार हुआ करते है। लेखक ने अपने पात्रों के साथ, ऐसा लगता है कि अपना खुद का जीवन जिया हो। इस विकास के दौर में आज का भारतीय कृषक अनेक समस्याओं का सामना करता हुआ अभिशापित जीवन जीने को मजबूर है। कथा-नायक का चरित्र सम्पर्ण उपन्यास में एक ऐसे

कथा संसार की रचना करता है जिसमें एक कृषक का आत्महत्या वरण करना अंतिम परिणति के रूप में सबके समक्ष है। प्रेमचन्द के किसान तो अत्यन्त सकरात्मक चरित्र के रूप में उभर कर दिखाई दिये, परन्तु आज का कृषक वर्तमानकालीन उपन्यासों में असहाय और निर्बल कृषक के रूप उपस्थित हुआ। प्रेमचन्द का यही किसान भारत को कृषि प्रधान देश बनाता था। आजादी के पहले भारत की अर्थव्यवस्था, समाजव्यवस्था और धर्मव्यवस्था को बनाने में गांवो की भूमिका आज शहर की अपेक्षा ज्यादा बड़ी थी। परन्तु आज के दौर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हस्तक्षेप और भारतीय आर्थिक गतिविधियाँ शहरी-ग्रामीण मानव सभ्यता पर एक अलग तरीके से प्रभाव डाल रही हैं। इंसानी सभ्यता का भविष्य खतरे में हैं, बदलने के नाम पर उनमें गरीब के शोषण के तरीके बदले हैं और विकास के नाम पर उनमें शहर और उसकी बहुविध विकृतियाँ पहुँची है। बाजार मॆं आये नये बीज, रासायनिक कीटनाशक दवा और नयी कृषि व्यवस्था ने पारम्परिक कृषि व्यवस्था व शैली को पूरी तरह से खत्म कर दिया है। यहाँ तक कि ऋणग्रस्त कृषक वर्ग आत्महत्या करने को मजबूर हो गया है, इसका समाधान न के बराबर।

कुल मिलाकर देखा जाये तो भारतीय कृषि व्यवस्था अत्यन्त जटिल और भयावह स्थिति से गुज़र रही है और बलेसर जैसा कृषक अपने को निर्बल पा रहा है। एक कृषक जिन सकंटो और विषमताओं को झेलता है उसका पूर्ण स्वच्छ स्वरूप बलेसर नामक कृषक चरित्र में चित्रांकन हुआ है।

उपन्यास के अन्त में बलेसर बीमार पत्नी की बिमारी और विस्थापन को लेकर जूझते नज़र आते है। नयी और पूरानी पीढ़ी के बीच चल रहे आत्मीय संवाद, शहरी रहन-सहन, दिनचर्या आदि को न अपनाते हुए बलेसर को अपने हृदय में पत्थर रखकर इतना कुछ सहना पड़ जाता है। गाँव और शहर के बीच यातायत करते, पत्नी और बत्तीस बिगहवा में तैयार फसल की कटनी की चिंता करते बलेसर मानसिक व शारीरिक पीड़ा के शिकार हो जाता है। अनिद्रा के शिकार बलेसर के लिए एक-एक दिन पहाड़ की भाँति लगने लगता है। वह कहते है ना चिंता चिता के समान होती है, उपन्यास की परिणति भी दुखद ही होती है। जीवन भर की कमाई और पुश्तैनी ज़मीन के हित को लेकर चिंतित बलेसर का जीवन समापन उनके जीवन का आधार बत्तीस बिगहवा उनके अपने हरे-भरे फसलों के बीच ही होता है।

175 पृष्ठों के इस उपन्यास के कथानक की पृष्ठभूमि नक्सलवाद व उग्रवाद के समय की है मतलब कि 1990-2000 के बाद के समय का भारतीय वातावरण उपस्थित किया गया है।

समग्र रूप से यह उपन्यास हिन्दी साहित्य जगत में प्रेमचन्द के ‘ गोदान ’ और रेणु के ‘ मैला आँचल ’ के विषय से बिल्कुल भिन्न विषय को उभारने में अपनी अलग पहचान रखने में सफल रहा है। यह उपन्यास किसानों को आत्महत्या करने पर रोकथाम लगाने का आह्वान करता है और निरंतर संघर्ष करते रहने और आशावादी बने रहने को ही सशक्त मार्ग दिखलाता है। मिथिलेश्वर इस उपन्यास में ग्राम जीवन की समस्याओं को उजागर कर पारदर्शी समाधान रखने का प्रयास भी करते है। उनकी भाषा के स्वर-ताल, शिल्पगत सरलता तथा भावपूर्ण व्यंजना मिथिलेश्वर की लेखनी के नये रचाव शैली को दिखलाती है।

कुल मिलाकर यह उपन्यास मिथिलेश्वर की भारतीय कृषि व्यवस्था पर शोध-वृति की सर्चलाइट और लगन का परिणाम है। इतना विशद होते हुए भी यह उपन्यास अपनी मार्मिकता से प्रारम्भ से अंत तक पाठक को बांधे रखने में पूर्णत: समर्थ है।

समीक्षित पुस्तक : तेरा संगी कोई नही – मिथिलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2018

अतिथि प्रवक्ता,
शिवानाथ शास्त्री कालेज, कोलकाता
मो. न.- 9903576056

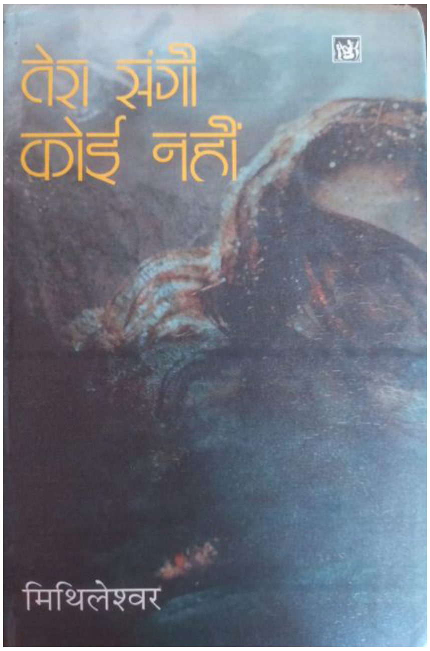

आलेख

# ग़ज़लकार अशोक 'अंजुम'

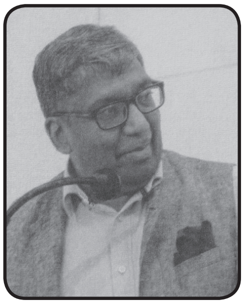

डॉ. विनोद प्रकाश गुप्ता 'शलभ'

पुस्तक का नाम- ग़ज़लकार अशोक 'अंजुम' / संपादन- बालस्वरूप 'राही'

प्रकाशक- सागर प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली / पृष्ठ संख्या- 172 मूल्य-300 / प्राप्ति मोबा. 9258779744

अशोक अंजुम आधुनिक ग़ज़ल, कविता के साथ-साथ साहित्य की अनेक विधाओं जैसे दोहा, गीत, हास्य-व्यंग्य, लघुकथा, कहानी, व्यंग्य, लेख, समीक्षा, भूमिका, साक्षात्कार व नाटक आदि में दक्षतापूर्ण लेखन के लिए विख्यात हैं। इन विधाओं में उनकी मौलिक पुस्तकें लगभग 31 हैं। अशोक ने 40 के लगभग पुस्तकें सम्पादित भी की हैं। 'अभिनव प्रयास' साहित्य पत्रिका के अंजुम भाई संस्थापक सम्पादक हैं -साथ ही कई साहित्यिक पत्रिकाओं के अतिथि सम्पादक हैं और कई साहित्यिक संस्थाओं से जुड़े हैं। मेरा तात्पर्य, अशोक अंजुम की इन उपलब्धियों को बताने के पीछे है कि उन्हें साहित्यिक जगत का गहरा अनुभव है और वे निरन्तर साहित्यिक पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे हैं।

उनके लेखन के बहुआयामी कैनवस हैं व उनकी साहित्यिक समझ व पहुँच दूरगामी है। उनके कवि, ग़ज़लकार मन की पीड़ाएँ भी, दुष्यंत की तरह, व्यक्तिगत व सार्वजनिक दोनों हैं। गीतऋषि गोपाल दास नीरज कहते हैं, ''-इनकी (अंजुम) ग़ज़लें जहाँ ग़ज़ल के अधिकांश तकाज़ों को पूरा करती हैं वहीं वे वर्तमान परिवेश की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को भी बड़े कलात्मक ढंग से उजागर करती हैं। ''

सूर्यभानु गुप्त लिखते हैं कि, ''गीत हो या ग़ज़ल, दोहे हों या व्यंग्य कविता, अशोक अंजुम एक ऐसा नाम है जिसने तमाम विधाओं में अपनी धाक जमाई है "। गुप्त जी अंजुम साहेब के दो दोहे उद्धृत करते हैं जिनका उत्कृष्ट साहित्यिक व सार्वजनिक महत्व है - देखिए -

**रात स्वप्न में दोस्तो, देखें अजब प्रसंग**
**संसद में मुजरा हुआ चंबल में सत्संग**
**ना जाने किस जनम का, भोग रही है भोग**
**कुर्सी तेरे भाग्य में, दो कौड़ी के लोग**

अशोक की सुप्रसिद्ध ग़ज़ल मिट्टी के पाँचों शेर गुप्त जी अपने लेख में दर्शाते हुए, जीवन से मिट्टी की उपमा को शाश्वत समझते हैं और ये सच है कि अंततोगत्वा ये शरीर और जीवन का सफर मिट्टी ही हो जाना है। जितना जीवन मिला उसे सच्चे और सार्थक विचारों के साथ जीना चाहिए - एक शेर देखिए जो गाँव के परिवेश को जीवंत करने के साथ मार्मिक भी बना देता है -

**मैं अपने खेत गिरवी रख के जब से शहर में आया**
**मेरी आँखों में चुभती ही रही सारी उमर मिट्टी**

इस संकलन ''गजलकार अंशोक 'अंजुम'' - संपादन/संचयन बालस्वरूप राही, में सम्पादक राही जी ने अशोक अंजुम की 101 ग़ज़लें चुनी- 94 गजलें उनके संकलनों से, व 6 उनकी कोरोना काल की ग़ज़लों से। बालस्वरूप राही वर्तमान युग के (लिविंग लेजेंड) जीवंत दिग्गज ग़ज़लकार हैं जिनके चुनाव को उत्कृष्ट मानना ही होगा। इसमें मुझे तो कोई संशय नहीं है। मैंने इन 101 गजलों से कुछ अशआर चुने हैं। वैसे तो चुनाव करना दुरुह था।

आज के परिवेश में सबसे महत्वपूर्ण व समसामयिक विषय धर्मनिरपेक्षता है। भारत एक बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक और अनेकानेक विविधताओं का देश हैं जहाँ धर्मनिरपेक्षता हमारे संविधान का मूलमंत्र जिसे हर हाल में क़ायम रखना सरकार समाज व स्वतंत्र संस्थाओं का दायित्व है - **ये ख़ूबसूरत शेर देखिए - 'मैं मंदिर भी नहीं जाता, मैं मस्जिद भी नहीं जाता**
**मगर जिस दर पे झुक जाऊँ, वो तेरा दर निकलता है।**

हमारे ज़माने के मशहूर फिल्मी गीतकार मनोज मुंतशिर ने अशोक के इस संग्रह की भूमिका में भी इस शेर को उद्धृत किया है। मनोज कहते हैं, "अशोक 'अंजुम ' को पढ़ना, एक आम इंसान के माथे पर बनती-बिगड़ती सिलवटों को पढ़ने जैसा है। वो कुछ ऐसा

नहीं लिखते, जो अलौकिक हो, गैर दुनियावी हो। जो है, इसी धूल-मिट्टी से जन्मा, इसी में लिपटा और इसी की बू-बास लिए हुए है ..... अशोक 'अंजुम' की कारीगरी बस इतनी-सी है, उन्होंने मिट्टी में आकाश और पाताल मिला देने का कीमिया ढूँढ निकाला है। "

दूसरी महत्वपूर्ण बात है ईश्वर की तटस्थता पर, धर्म के प्रवचनों पर जिनमें नेकियाँ ही नेकियाँ भरी हैं और प्रवचनों के रूप में सिखाई जाती हैं। संसार की यह विडम्बना है कि हर धर्म नेकियाँ सिखाता है पर मौला/ ईश्वर/अल्लाह के नाम पर ही इंसान एक दूसरे का लहू बहाने से चूकता नहीं, आज भी यह शाश्वत सत्य है। सारे संसार की ये कड़वी सच्चाई है। ये शेर देखिए-

**तू सिखाता है नेकियों का सबक़ दुनिया को**

**तेरे ही नाम से बहता है क्यों लहू मौला**

ईश्वर-ईश्वर में लड़ाई को दोनों ईश्वर तटस्थ भाव से देखते हैं।

यथार्थ में अशोक ज़मीन से जुड़े, एक अति संवेदनशील साहित्यकार हैं और उनके कवित्व की पहुँच और सम्प्रेषणीयता मानव मन की गहराइयों तक जाती है। अशोक 'अंजुम' के रिश्तों पर कहें दो छोर अद्भुत हैं - देखिए

**'तेरे मेरे बीच में ऐसी दूरी है**

**मैं तेरा हूँ रोज़ बताना पड़ता है '**

**रिश्तों में कुछ जान बचाए रखने को**

**सच्चा होकर भी झुक जाना पड़ता है**

कहने का तात्पर्य है कि खामोशी नहीं, रिश्तों में गर्माहट के लिए अपनी भावनाओं को निरन्तर व्यक्त करना पड़ता है। रिश्तों में कोई भी व्यक्ति जजमैंटल नहीं हो सकता ना ही किसी भी रिश्ते या रिलेशनशिप को कोई भी 'टेकन फार ग्रांटेड' ले सकता है। रिश्तों को अनवरत निभाना पड़ता है, परस्पर संवाद अनवरत चलता रहना चाहिए। यह एक सार्वभौमिक सत्य है। रिश्तों पर एक और शेर देखिए जो घर-घर की कहानी है और रूह से महसूस कीजिए-

**खाना-पीना, हँसी-ठिठोली, सारा कारोबार अलग**

**जाने क्या-क्या कर देती है आँगन की दीवार अलग**

ये शेर सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक तो है पर परिवारों के अलग होने की हक़ीक़त भी बयाँ करता है- परिवार अलग होते हैं तो विस्तार भी पाते हैं।

सारे संसार में गरीब वर्ग के हालात किसी से छुपे नहीं और हमारे देश में तो सरकार के दावों के विपरीत 84 करोड़ लोग सरकार के 5 किलो राशन की भीख पर बमुश्किल तमाम गुज़ारा कर रहे है। सरकार उनका हक़ खैरात बाँटकर अदा करती लगती है और आने वाले सालों में भी ये हालात सुधरने वाले नहीं। शाइर अपनी पीड़ा को इस ख़ूबसूरत शेर में पिरोता है -

**ये जो ख़ैरात है इसको रहने ही दो**

**हमको हक़ चाहिए मेहरबानी नहीं**

आजकल शहरीकरण की ओर बहुत ज़ोर दिया जा रहा है। शाइर पब्लिक पॉलिसी पर कटाक्ष नहीं करता पर शहरों में जो हमारी मानसिकता हो जाती है, जितने हम असंवेदनशील हो जाते हैं, वो प्रबुद्ध शाइर की नज़र से नहीं बचता- पड़ौसियों को पडौसी का पता नहीं होता- देखिए ये शेर- रात आधी देखते टी.वी. रहे, फिर सो गए

**कल पड़ोसी लुट गया अखबार से मालूम हुआ**

शहरीकरण से गाँव वासियों के विस्थापन व रोजगार की समस्या जुड़ी हुई है। गाँव की ज़मीन पर दवाब कम करने के लिए शहरों में रोज़गार की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए वरना अफरातफरी मच जाएगी। अगर विस्थापितों को रोज़गार नहीं मिलेगा तो वो और उनके परिवार दरबदर हो जाएँगे; भुखमरी, बेरोजगारी व कुपोषण के शिकार हो जाएँगे। देखिए ये शेर-

**शहरों की भीड़ में न कहीं खो गए हों वे**

**जो गाँव से गए थे कमाने के वास्ते**

इसी का दूसरा रूप है गाँवों से, अपनी मिट्टी से रिश्ता टूट जाना। अपने लोग भी विस्थापितों को वापस कबूल करने में हिचकिचाते हैं- यही ज़िंदा रहने की जद्दोजहद है, विस्थापन की समस्या- घटते गाँव, बढ़ते शहर और गाँव से टूटते सम्बन्ध- ये शेर देखिए

**आधियाँ पुरज़ोर अपनी कोशिशों में मुब्तला हैं**

**रब ज़मीनों से जड़ों का राब्ता न टूट जाए**

पिछले कुछ सालों से लोकतंत्र की कुछ मूल धारणाओं पर सियासी प्रहार तेज हो गये हैं। लोकतंत्र में भी सरकारें आम जन के मानवाधिकारों और दूसरी स्वतंत्रताओं पर कई प्रकार के अंकुश लगाना चाह रही हैं तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से तो हमारी सरकार भी दुखी है- ये सब लोकतंत्र के लिए लोकतंत्र के नाम पर हो रहा है - ये अशआर देखिए -

**ऐ लोकतंत्र ! तेरे चमत्कार को नमन**

**जनता ही मिले तुझको निशाने के वास्ते**

**राहतों के नाम पर कुछ बाँट कर हमदर्दियाँ**

**तंत्र इतराया हुआ है और हम ख़ामोश हैं**

**लोकतंत्र ने लोक किनारे लगा दिया**

**तंत्र सदा करता मनमानी, हय रब्बा !**

बड़ी विडंबना ये है कि जिस जनता के मताधिकार से नेता सत्ता प्राप्त करते हैं उसी अवाम को कुचल देना चाहते हैं। वो हर क़ानून बदल देना चाहते हैं जो जनता को शक्तियाँ प्रदान करता है- बस जनता मूक झुण्डों में बदल जाए और सोचने-समझने की कोशिश भी ना

करे। पर शायर याद दिलाता है कि यही अवाम अथाह हौसलों से भरा होता है बस संकल्प और इरादा मजबूत होना चाहिए। जिनका इरादा पक्का होगा उनके अपने गंतव्य पर पहुँचने से कोई बाधा नहीं रोक सकती और जो व्यक्ति ज़रा सी कठिनाइयों से घबरा जाते हैं वो कभी अपनी मंज़िल या लक्ष्य पा ही नहीं सकते - देखिए ये शेर -

**परिंदे वे कभी ऊँची उड़ाने भर नहीं सकते**

**ज़रा सी धूप से जिनका इरादा टूट जाता है**

अशोक 'अंजुम' 'ईजी चेयर आइडेलिज्म' के सख़्त खिलाफ हैं। वो चाहे व्यक्ति हो या देश, जहाँ कोई 'सेंस ऑफ अर्जन्सी' नहीं है, अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूकता नहीं, अपने दायित्वों को करने की व्यग्रता नहीं वहाँ कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं किए जा सकते। व्यक्ति हो या अवाम, बस समय व्यर्थ न करें और काम के प्रति सजगता दिखायें तो व्यक्ति तरक़्क़ी करते हैं और जब व्यक्ति उन्नति करते हैं तो सम्पूर्ण देश उन्नति के शिखर पर पहुँचता है। समय की बर्बादी कदापि न करें - देखिए ये शेर-

**ये करना है, वो करना है सोचा करते हैं**

**यूँ ही साँस-साँस हम अपनी ज़ाया करते है**

हमारे देश में बूढ़े भी हैं और बूढ़े होते लोगों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। उनकी देखभाल करना हमारा और सरकार का दायित्व है। अंजुम जी की एक खूबसूरत मुसलसल गजल से बस एक शेर लिया है जो बुजुर्गों के प्रति हमें अपनी संवेदनशीलता के प्रति सदा सचेत करता रहेगा -

**एक बूढ़े जिस्म से लाखों दुआएँ झर रही हैं**

**एक नन्हा हाथ मुसकाकर दवाई दे रहा है**

पहले हम अपनी ज़रूरतों के अनुसार बाज़ार से ख़रीदारी करते थे, अब बाज़ार (यानि कम्पनियों) ने ऐसे-ऐसे उत्पाद बनाए हैं जिन्होंने ख़्वाहिशों के अम्बार लगा दिये हैं। ये भी एक प्रकार का बाज़ारी जाल है जिसमें पूरी दुनिया फँस चुकी है - देखिए ये दो शेर -

**ये भी लूँ, हाँ ये भी लूँ, हाँ ये भी लूँ**

**बस यही तकरार है बाज़ार में**

**चिड़ियाँ हैं बाज़ारों में**

**जाल के नीचे दाने हैं**

दूसरी विडम्बना है कि ज़रूरतों ने बड़े से बड़े व योग्य व्यक्तियों को भी 'कोम्प्रोमाईज' यानि कई प्रकार के समझौते करने पर बाध्य कर दिया है। यहाँ तक कि जो महत्वपूर्ण संवैधानिक पदों पर आसीन हैं, वो अपनी आँखें मूँद कर, और कड़ी पब्लिक आलोचनाओं को दरकिनार करते हुए बड़ी बेशर्मी से समझौते कर लेते हैं - ये शेर देखिए

**नजर नीची न कर 'अंजुम ' ज़रा भी**

**कभी सब की ज़रूरत बोलती है**

एक और सामाजिक विद्रूपता देखिए- जब कोई शुहरत की बुलंदी पर पहुँचता है तो स्वयं अपनों से फासले बढ़ते हैं तथा दुनिया भी चढ़ते सूरज को सलाम करने लग जाता है। ये सामाजिक व्यवहार सार्वभौमिक है - ये शेर देखिए -

**उठा लेती है हाथों हाथ दुनिया**

**बुलंदी से यूँ शुहरत बोलती है**

यही दूरियाँ परस्पर रिश्तों में भी आती हैं। व्यवहार बदल जाते हैं जो समाज में घोर सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक असंतुलन को दर्शाते हैं- ये शेर देखिए

**थम गए रिश्ते पुराने, सीढ़ियाँ बढ़ती गयीं**

**लोग ऊँचे उठ गए और दूरियाँ बढ़ती गयीं**

**क़द मेरा बढ़ता गया तो फिर उसी रफ्तार से**

**मेरी जानिब उठने वाली उँगलियाँ बढ़ती गयीं**

शाइरी के उस्तादों पर भी व्यंग्य करने से अंजुम नहीं चूकते- ये शेर देखिए

**हर तरफ उस्ताद कितने मोर्चा साधे हुए हैं**

**ऐ मेरे शायर ग़ज़ल का क़ाफिया न टूट जाए**

**एक मेरा खुद का शेर देखिए**

**परिंदे रेगजारों के तो हैं प्यासे जनम भर के,**

**मुँडेरों पर 'शलभ' उनके लिए बर्तन भरा रखना "**

अंजुम भाई ने और भी खूबसूरती से आशान्वित करता शेर कहा- जहां से दाना-पानी उपलब्ध होता है वहाँ एक नया उजाला चमकने लगता है -

**फुदक-फुदक कर मचल-मचल कर गाने लगे परिंदे**

**दाना-पानी मिला तो छत पे आने लगे परिंदे**

राजनेता और राजनीति पर अंजुम के ये तीन शेर चुने हैं मैंने जो व्यंग्यात्मक शैली में आज के नेताओं की नैतिकता पर तीखा प्रहार करते हैं। आजकल दलबदलू नेताओं की चाँदी है और पिछले 10 सालों में तो दलबदलू नेताओं की बाढ़-सी आ गई है। वर्तमान सरकार अपनी वाशिंग मशीन में भ्रष्टाचारिओं व व्यभिचारियों को धो-धो कर अपनी पार्टी में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर रही है- देखिए शाइर की व्यथा और व्यंग्य-

**तुम दलबदलू यार, तुम्हारे जलवे हैं**

**सत्ता में हर बार, तुम्हारे जलवे हैं**

**मरघिल्ले थे, अब तुम सेहत मंद हुए**

**लोकतंत्र बीमार, तुम्हारे जलवे हैं**

**सचमुच में ही घाघ राजनेता हो तुम**

**कोई हो सरकार तुम्हारे जलवे हैं**

आज की मोबाइल संस्कृति व सोशल मीडिया पर भी अंजुम ने कटाक्ष किया है, जो अब हमारे व्यवहार का नितांत आवश्यक हिस्सा बन गया है। सोशल लाइफ, एक दूसरे के यहाँ आना-जाना मिलना, बच्चों का गलियों में खेलना व परिवार का एक साथ उठना बैठना - सब मोबाइल की भेंट चढ़ गया है। मैंने इस कई अशआर वाली ग़ज़ल से ये शेर चुना जो हमारी सामाजिक ज़िंदगी का अभद्र आईना है -

**दुनिया-भर की चीज़ों को ये धीरे-धीरे निगल गया**

**जेबों में सारी दुनिया है, जेबों में है मोबाइल**

अंजुम की 6 ग़ज़लें कोरोना काल से सम्बंधित सम्पादक ने इस संकलन में समाहित की है, जो चित्रात्मक हैं और उस दौर की बेरुख़ी व सरकारी बेरहमी को व्यक्त करती हैं -

**पटरी-पटरी मौत बिछी है सड़क-सड़क पर पुलिस खड़ी**

**इन सबसे भैया बच-बच कर, पैदल-पैदल चले चलो !**

**जब पेट से न भूख का समझौता हो सका**

**आटा बचा न दाल, चले आए सड़क पे**

संकलन में सम्पादक ने एक ग़ज़ल संकलित की जिसका ये सकारात्मक शेर मुझे बहुत आशान्वित कर गया। हमारे या किसी भी समाज में कुछ लोग हमेशा ज़िंदा रहते हैं जो सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना के सूत्रधार बनते ही हैं। और जब तक वे ज़िंदा हैं, वे सब वो नियम बदलने की क्षमता रखते हैं जो आम जन के मानवाधिकारों और संविधानिक अधिकारों को छीनने की कोशिश करते हैं - देखिए इस खूबसूरत शेर को-

**कुछ तो है जो सच की ख़ातिर सारे नियम बदलता है**

**शीशे से टकराकर वरना कैसे पत्थर टूट गए**

मैं इस सकारात्मक शेर पर यह समालोचनात्मक लेख पूर्ण करना चाहूँगा। हमारे युग के वरिष्ठतम शाइर व साहित्यकार आदरणीय बालस्वरूप राही जी ने हरदिल अज़ीज़ शाइर अशोक 'अंजुम' की बेहतरीन ग़ज़लों को इस संकलन में समाहित किया है। इन ग़ज़लों में, ग़ज़ल के शिल्प का बहुत ध्यान रक्खा गया है और गेयता व शेरियत कथ्य के साथ-साथ चलते हैं। कहीं-कहीं यथार्थ की बाध्यता शेरों में सपाटबयानी व चित्रात्मकता ले आती है, जिसे अंजुम अपनी कलात्मक लेखन शैली से निभाते हैं। ये संग्रह पठनीय व संग्रहणीय है। इसे अपने नीजी पुस्तकालय में संजोएँ, पुस्तकालय की शान बढ़ेगी।

अशोक अंजुम स्वयं एक प्रमुख साहित्यिक पत्रिका के सम्पादक हैं, इनको अनेकानेक पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है, थोड़ी-बहुत धनवर्षा भी हुई है। आज देश-विदेश में कविता, ग़ज़ल व अन्य साहित्यिक विधाओं में उनकी जबरदस्त पैठ है, यही उनका सबसे महत्वपूर्ण पुरस्कार व सम्मान है। मैं आशा करता हूँ कि वो इसी संकल्प से साहित्य सेवा के अलमबरदार बने रहेंगे।

**अशोक भाई को बहुत-बहुत बधाई शुभकामनाएँ मंगलकामनाएँ।**

समीक्षक

**डॉ. विनोद प्रकाश गुप्ता 'शलभ'**

**गुरुग्राम- 122101 ;हरियाणा)**

**मोबा. 9811169069**

**vinjisha55@yahoo.co.in**

समीक्षा

# नदी रंग जैसी लड़की: सरकारी परियोजनाएँ और सूखती नदियाँ

डॉ. मधुबाला शुक्ल

प्रकृति और मानव दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। हम यह कह सकते हैं कि, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रकृति, मानव के लिए जीवनदायिनी का काम करती है। परंतु अपनी असीम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव ने प्रकृति और पर्यावरण का अंधाधुंध दोहन किया है। परिणाम स्वरुप प्राकृतिक असंतुलन उत्पन्न हो गया है। मनुष्यों ने जब भी प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया है, प्रकृति ने क्रोध परिणाम स्वरूप सूखा, बाढ़, तूफान के रूप में मनुष्यों को सतत सचेत किया है। जिसका ज्वलंत स्वरूप **'कोरोना'** के रूप में सभी देशों ने देख लिया है।

कथाकार **एस.आर हरनोट** का उपन्यास **'नदी-रंग जैसी लड़की'** पहाडी जीवन संघर्ष की कहानी है। प्रकृति की गोद में बसे हरनोट जी की अत्यधिक रचनाएँ पर्यावरण एवं प्रकृति से संबंधित है। विकास और आधुनिकता की दौड़ ने प्रकृति को अथाह हानि पहुँचाई है। कहीं न कहीं हरनोट जी के हृदय को यह सारी बातें मथती रही हैं। जिसका प्रभाव उनकी कहानियों, कविताओं और उपन्यासों में झलकता है। जिसका उदाहरण हम उनकी इस कविता द्वारा देख सकते हैं- **'एक मंदिर का जमींदोज हो जाना, ईश्वर का, ईश्वर पर आक्रमण, पूजा में निरंतर जीवन माँगते लोग, काश ! पूजा में माँग लेते पहाड़, थोड़े से पेड़ और अंजुली भर पानी, दोनों बच जाते पृथ्वी और जीवन'।**

हरनोट जी की कहानियाँ पहाड़ी जीवन का चित्र इतने मार्मिक तरीक़े से पाठकों के समक्ष चित्रित होती हैं, जो हमेशा के लिए पाठकों की स्मृति का हिस्सा बन जाती हैं। उपन्यास को उन्होंने समर्पित किया है, शतु (शतद्रु), यमु (यमुना), विपु (विपाषा), इरा (इरावती), चन्द्रभागा (चिनाब), गिरि (गिरिगंगा), पबु (पब्बर) और सपु (स्पिति) की अथाह वेदनाओं के लिए। सदियों से बहती चली आ रही ये नदियाँ वर्तमान समय में सूखती जा रही हैं। धीरे-धीरे इनका अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है....। इन नदियों की पीड़ा को साहित्यकार ने 'शतु' नाम की लड़की (नदी) के प्रतीक माध्यम से वर्णित किया है।

शतद्रु का अर्थ है, जिसकी सौ शाखाएँ हो। बाद में यह नाम बदलते-बदलते सतलुज हो गया। हिमाचल प्रदेश में इसका दायरा ३२० कि.मी. है। सतलुज, भारत में सिंधु की सबसे लंबी सहायक नदी है, जो तिब्बत से निकलती हुई शिपकिला दर्रे से होकर भारत में प्रवेश करती है। 'शतद्रु' नदी पर भाखड़ा नंगल बाँध, 'कावेरी' नदी पर मेट्टूर बाँध, 'नर्मदा' नदी पर सरदार सरोवर बाँध और 'भागीरथी' नदी पर टेहरी बाँध, सिंचाई के साथ-साथ जल विद्युत् उद्देश्यों के लिए बना है। ऐसे सैकड़ों बाँध, नदियों पर बनाए गए हैं। जो प्रमुख रूप से सामाजिक समस्या, आर्थिक समस्या और पर्यावरणीय समस्या उत्पन्न करती हैं। **'नदी-रंग जैसी लड़की'** उपन्यास के माध्यम से साहित्यकार हरनोट जी ने 'शतद्रु' नदी की पीड़ा अभिव्यक्त की है।

उपन्यास की मुख्य पात्र, सुनमा देई के साथ-साथ 'शतद्रु' नदी की कहानी भी साथ-साथ चलती है। छठवें अध्याय से कहानी अपनी गति पकड़ती है, जब शंकर दादा के कहने पर सुनमा देई पंचायत के चुनाव में खड़ी होकर, चुनाव जीत जाती हैं। वह अपने पंचायत के लिए वो सारे कार्य करती हैं जो पिछली पंचायत ने नहीं किये बल्कि वे सरकारी रूपया हजम कर जाते थे। यहाँ पर लेखक ने इस ओर इशारा किया है कि, गाँव के विकास के लिए सरकार बजट तो पास करती है किंतु वह रूपया गरीबों तक पहुँच नहीं पाता। सरकारी अफसर आपस में ही मिल बाँटकर सरकारी रूपया हजम कर लेते हैं।

जो इलाका पिछड़ा हुआ था, जहाँ सड़के नहीं, बिजली नहीं, पानी नहीं। गाँव की लड़कियाँ पाँचवीं के बाद दूर पढ़ने जा ही नहीं सकती थी। उस गाँव में, सुनमा देई ने, सरकारी योजनाएँ अपनी पंचायत के लोगों तक पहुँचाई, जो कई सालों से सिर्फ कागजों तक सीमित थी। अपनी सारी जिम्मेदारियों से मुक्त हुई सुनमा देई, अपना शेष जीवन गाँव के लोगों की भलाई के लिए जीना चाहती

थी। जिस तरह 'शतु' नदी न जाने कितने उद्देश्यों के साथ बहती आ रही है...अनवरत...अनन्तर... ।

सुनमा देई के लिए मुश्किल तब खडी हो जाती है जब उसके साथ पंचायत के उप-प्रधान और बाकी सदस्य अंदर ही अंदर उसके खिलाफ हो जाते हैं। जिसका कारण सुनमा देई का ईमानदारी से काम करना था। यहाँ पर लेखक ने ईमानदारी से काम करने वालों के प्रति बेईमान लोगों के चरित्र के बारे में चित्रित किया है। किस तरह सरकारी पैसों का दुरुपयोग करके पंचायतें विकास का नहीं, कमाई का अड्डा बनती जा रही है। सरकार की तरफ से न पैसे की कमी है, न योजनाओं की कमी है, कमी है तो सिर्फ उन पैसों को बहुत ईमानदारी से खर्च करने की और बहुत सूझबूझ से उन योजनाओं को लागू करने की। पाँच साल में ऐसा क्या चमत्कार हो जाता है कि एक वार्ड मेंम्बर का पक्का मकान बन जाता है...? उसके पास मोटर-गाड़ी आ जाती है...? उसके बच्चे गाँव के स्कूलों में नहीं, शहरों के अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ने लगते है। बेचारे गरीब, दिनोदिन गरीब होते जाते हैं। ऐसे कई सवाल उपन्यास के माध्यम से लेखक ने उठाएँ हैं।

क्यों एक मामूली से पंचायत सदस्य के लिए लोगों में चुनाव लड़ने के लिए इतनी मारधाड़ मची रहती है...? क्योंकि वे अब इन चुनाव को, चुनाव नहीं व्यापार मानने लगे हैं। जो गाँव से लेकर सचिवालय और विधानसभा तक होता है। नीचे से ऊपर तक के दफ्तरों में जिसने अपने पैर जमा लिए हैं। एक तरफ योजनाओं और गरीबों के नाम से पैसा पंचायतों में आता है और वहीं दूसरे हाथों पंचायत सचिवों से होता हुआ ब्लॉक और संबंधित सभी विभागों के मध्य आपस में बंट जाता है।

सुनमा देई के जीवन में एक और हलचल तब उत्पन्न हुई, जब नदी पर बाँध बनने की खबर उन तक पहुँचती है। जिसमें पंचायत के सात गाँव के अधिग्रहण की सूचना थी। पंचायत का काम करते-करते उन्हें इन बातों का बहुत अनुभव हो गया था कि, किसी भी राजनीतिक पार्टी के एजेंडे में विकास नहीं रह गया है, बस रह गया है स्वार्थ, भ्रष्टाचार, धर्म और जाति के नाम पर लड़ाइयाँ। सरकार चाहे किसी भी पार्टी की रहे परंतु विकास केवल काग़ज़ों, फाइलों और भाषणों तक सीमित होता है। उसका एक चौथाई भी नीचे के आदमी तक नहीं पहुँच पाता... । न किसान के पास, न मज़दूरों के पास और न ही बेघरों और दलितों तथा आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर तबके के पास। शायद सत्ता के लिए यह सब ज़रूरी हो गया है कि, विकास के नाम पर जनता को उलझाये रखो।

औद्योगीकरण के फल स्वरुप पूंजीवाद का उदय हुआ। इसमें पूंजी का महत्व भूमि से अधिक हो गया। पहले भू स्वामी उच्च वर्ग का प्रतिनिधि होता था और श्रमिक निम्न वर्ग का। अब अनेक भूस्वामी अपनी भूमि संपत्ति खोकर कुछ नीचे आ गए तथा अनेक श्रमिक उद्योग के सहारे धनार्जन कर अपनी स्थिति से ऊपर उठ गए। नदी किनारे बसे गाँव के लोगों का जीवन किस प्रकार नदी पर अवलंबित होता है, यह हम भलीभांति जानते हैं परंतु बिजली निर्माण के लिए जल का होना आवश्यक है अत: उन राज्यों को निशाना बनाया जाता है जहाँ पर नदियाँ हो ताकि बाँध बनाकर बिजली का उत्पादन किया जा सके परंतु यह विचार नहीं किया जाता कि नदी किनारे बसे सैकड़ों गाँवों का क्या होगा....? सदियों से नदी के किनारे बसे लोग अपने जमीन से उजड़ कर दरबदर भटकने के लिए विवश हो जाते हैं। अपनी ही जमीन के मालिक दरबदर की ठोंकरे खाने के लिए मजबूर हो जाते हैं, जिसका वर्णन लेखक ने उपन्यास में किया है।

नदी पर बाँध न बने इसके लिए सुनमा देई निर्भीक होकर मंच पर आसीन मंत्री और विधायक के समक्ष सबको मुखातिब करते हुए कहती हैं- **"मैं उसी पंचायत की प्रधान सुनमा देई हूँ जिसके कई गाँव इस बाँध में डूब जायेंगे। उनके पूर्वजों की बहुत मेहनत से बनायी पुश्तैनी सम्पत्तियाँ पानी में समा जायेगी। उनके घर, उनके खेत, उनके खलिहान, उनके देवी-देवता और उनके घराट, साथ न जाने कितने सपने भी साथ डूबेंगे। साथ डूब जायेगी उनकी आस्था, उनके पसीने-पसीने से निर्मित एक संस्कृति। उसके बदले क्या मिलेगा उन्हें, बस कुछ रुपया... एक बैंक अकाउंट....एक काग़ज़ की पास-बुक"।** [१]

उस नदी से सुनमा देई की कई यादें बचपन से अब तक जुडी हुई थी। वे नदी के किनारे जाकर किसी चट्टान पर बैठ जाती। पाँव घुटनों तक पानी में डाल देती और नदी से खूब बातें करती मानो मायके में अपनी अम्मा के पास ही बैठी हो। अपने दुःखों, पीड़ाओं और उदासियों को नदी से बाँटती, नदी के न जाने कितने रूप देखे थे सुनमा ने। कभी माँ, कभी पिता तो कभी एक बहुत प्यारी सहेली के रूप में। नदी के इन प्रारूपों से उसकी न जाने कितनी शिकायतें होती, कितने दुःख-सुख की बातें, जब मन हल्का होता तो पानी से पाँव निकालकर उन्हें अपने चादरू से पोंछ लेती और घराट-घर लौटते हुए उसके सिर पर रखा दुपट्टा भारी होता जाता। लगता जैसे नदी को बाँधकर घर ही ले जा रही हो। फिर अपनी झोली में कई

आकृतियों के पत्थरों को सांज कर घर ले आती। घर के आँगन में बनाई हुई फूलों की क्यारियों में सजावट के लिए नदी के पत्थर लगा देती, जिससे आँगन भी नदी जैसा दिखने लगता था। कई बार उन पत्थरों में अपना दाहिना कान लगाकर नदी की आवाज़ सुन लिया करती थी। उस आवाज़ को वह अपने घर के भीतर हर कोनों में महसूस किया करती। इस तरह घर कई बार उसे नदी के घर जैसा लगता था।

सुनमा व्याकुल हो उठती है यह सोचकर कि एक दिन यह बूट इस नदी को रौंद देगा। नदी चीख़ती और चिल्लाती रहेगी पर उसकी चीखें, चिंघाड़ें और दहाड़े कोई सुन नहीं पायेगा। उसे बेदर्दी से मार दिया जायेगा। सत्ता और लोगों की उपस्थिति में विकास के नाम पर नदी का बलात्कार होगा... शायद औरत और नदी की यही नियति विधाता ने लिखी होगी...। बाँध न बने इसके लिए सुनमा देई बहुत प्रयास करती हैं। किंतु वो सफल नहीं हो पाती। यहाँ पर लेखक ने एक सशक्त नारी का उल्लेख किया है जो मंच पर आसीन विधायक और मंत्री के सामने अपने भाषण में नदी पर बाँध बनने से निर्माण होने वाली समस्याओं का विस्तृत ब्योरा देती है। मात्र वही एक स्त्री है जो बिना डरे, निर्भीक होकर सरकारी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाती है। बाकी लोग मूक बने प्रशासन की हाँ में हाँ मिलाने का कार्य करते हैं।

सरकारी आदेश पारित हो गया तो उसका पूर्ण होना तय था। बाँध बना, लोग बेघर हुए परंतु सरकारी व्यवस्था, सरकारी लोग मूक बने तमाशा देखते रहे। शांत, निर्मल धारा को अवरूद्ध कर जब बाँध की निर्मिती कर दी जाती है तो नदी अपना अस्तित्व खोकर डरावना रूप धारण कर लेती है, जिसकी व्यथा 'शतु' (लड़की) व्यक्त करती है। **"खेत मजदूर औरतें पहले भी अपने पारिवारिक अर्थ तंत्र की रीढ़ हुआ करती थी लेकिन अब अपनी आर्थिक शक्ति और खुद मुख्तारी का उनका एहसास अधिक गहरा हुआ है। यह अनायास नहीं है कि बड़े बांधों के निर्माण के विरोध में चलने वाले आंदोलन या शराब बंदी जैसे आंदोलन में आज गरीब कामकाजी औरतों की और उत्तराखंड जैसे आंदोलन में आप मध्यम वर्गीय घरेलू औरतों की प्रभावी और अग्रणी भूमिका बनती हुई दिखाई दे रही है"।** [२]

नदी हमारा जीवन है, नदी, किनारे बसे गाँव सींचती है, पहाड़ों पर उगे पेड़ों को नमी देती है, उन्हें पानी देती है। यह नदी नहीं है, एक प्राचीन इतिहास है, संस्कृति है और न जाने कितनी सभ्यताएँ इसके आस-पास जन्मी हैं। नदी हम सभी की माँ है, वह बाँध में समाकर मर रही है। अनेक नदियों पर पहले ही कितनी बिजली परियोजनाएँ बन चुकी है, बन रही है और यह बेचारी टुकड़े-टुकड़े टूटकर न जाने कितनी सुरंगों में जाकर अपना मूल नष्ट कर रही है। विकास के नाम पर ऐसा करना और वह भी इस शान्त व कुदरत के प्रदेश में क्या सही था और सही... है?

हमारा देश नदियों का देश है। ये नदियाँ हमारा जीवन है। जंगलों का भविष्य है। लेकिन आज सभी नदियाँ विकास की अन्धी दौड़ में न केवल पिछड़ रही है बल्कि उनका अस्तित्व ही समाप्त हो रहा है। हम प्रकृति को सीधी चुनौती दे रहे हैं। मैं नहीं कहती कि विकास नहीं होना चाहिए। वह वर्तमान समय की ज़रूरत है परन्तु उस विकास की आड़ में प्रकृति और आम जीवन की बर्बादी कहाँ तक उचित है...? मनुष्य का लालच आज जिस तरह बढ़ रहा है उसका शिकार हमारी पृथ्वी ही ज़्यादा हुई है। पृथ्वी सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त है किन्तु उनके लालच की पूर्ति के लिए नहीं। ये हमारे पूर्वजों से प्राप्त सम्पत्तियाँ नहीं है, वे हमारे बच्चों की धरोहरें हैं। वे जैसी हमें मिली हैं, वैसी ही भावी पीढ़ियों को सौंपना होगा।

मनुष्यों के लालच ने नदियों पर इतने अत्याचार किये हैं कि, उनका काम बस बिजली पैदा करना रह गया है, पहाड़ों और घाटियों का काम सीमेंट उगलना रह गया है। हमारी सरकारों का काम उन कम्पनियों को पालना-पोसना और अपने-अपने बैंक बैलेंस बढ़ाते रहने तक ही सीमित रह गया है। आम जन की आम ज़रूरतें समाप्त कर दी गयी हैं। पता नहीं हम भावी पीढ़ी को क्या देने वाले हैं? अपने बच्चों को क्या हम नंगे पहाड़, सूखी, नदियाँ, उजाड़ खेत, गन्दा प्रदूषित पानी और हवा देंगे? सच में, कितनी बड़ी विडम्बना है कि हम लोगों को पर्यावरण बचाने के लिए अपनी सरकारों से ही लड़ना पड़ रहा है। बावजूद उसके कोई नहीं सुनता। आज विरोध या अपनी बात कहना सरकार के साथ देश के विरोध में खड़े होना बताया जाता है।

जिस भावी पीढ़ी का जिक्र कर, हम विकास के नाम पर प्रकृति का नाश कर रहे हैं, वह हमें कभी माफ नहीं करेगी...बिल्कुल भी नहीं। क्योंकि हमने उनके भीतर लगातार हिंसक प्रवृत्तियाँ भरनी शुरू कर दी है। वे जब किताबों में निर्मल जल से भरी नदियों के बारे में पढ़ेंगे, हरे-भरे जंगलों के बारे में पढ़ेंगे और ठण्डी हवाओं का जिक्र पढ़ेंगे तो वे हमसे उन नदियों को माँगेंगे, पहाड़ों को माँगेंगे,

हरियाली और शुद्ध हवाओं को माँगेंगे... परन्तु हमारे पास देने को कुछ नहीं होगा।

जो सरकारी, गैर सरकारी संस्थाएँ प्रकृति और पर्यावरण को बचाएँ रखने के लिए लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक करने के लिए कार्यरत हैं, उनके काम को लोग सराहते हैं, उनकी प्रशंसा भी करते हैं, ज़िन्दाबाद के नारे भी लगाते हैं लेकिन परिणाम वही ढाक के तीन पात। न जनता जागेगी और न सरकार के कान पर जूं रेंगेगी, सरकार एक कान से सुनेगी और दूसरे कान से निकाल देगी। अब बोलने वालों के खिलाफ बन्द वातानुकूलित कमरों में सोचने की परम्परा चल पड़ी है।

सुनमा के भाषण या विरोध की चर्चा कई दिनों तक लोगों के बीच रही परन्तु कुछ दिनों बाद सभी भूल जायेंगे यह बात भी उसे मालूम थी...। **"वह देख रही थी कि नदी चुपचाप बह रही थी। डरी सहमी हुई-सी जैसे किसी ने उसके कान में भविष्य के अन्धकार भर दिये हो। कोई बहुत मन और ध्यान से देखता तो जान पाता कि पूर्ववत आवेग और चपलता उसकी लहरों में नहीं थी। यह बस केवल सुनमा ही समझ और जान सकती थी। नदी के गर्भ में छिपे उसके अथाह दर्द और वेदनाओं को सुनमा ही पढ़ सकती थी"।** [३] महिलाओं ने सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे उठाने के साथ-साथ पर्यावरण जैसे मुद्दे भी उठाए हैं जिसमें चिपको आंदोलन बहुत प्रसिद्ध हुआ।

सुनमा देई को अगले चुनाव में सत्तारूढ़ पार्टी की तरफ से विधायकी के टिकट का प्रलोभन दिया गया और साथ उसकी ज़मीन का मुँह माँगा दाम भी। परन्तु सुनमा जानती थी, ये सब उसकी चुप्पी के लिए दिया जा रहा है, किसी योग्यता के लिए नहीं। सत्तासीन पार्टी से उसकी विचारधारा मेल नहीं खाती थी। हालाँकि, उसका बहुत मन था कि वह अपने विरोध को तेज़ धार दे परन्तु ढलती उम्र और स्वास्थ्य के कारण और अपनी पंचायत के ही जब अधिकतर लोग बिक जायें और घुटने टेक दें तो वह किस के सहारे इस लड़ाई को लड़ेगी....? इसके बावजूद भी उसने हार नहीं मानी। अपने विरोध को उन गरीब परिवारों के लिए इस्तेमाल किया जो उसकी अपनी पंचायत के थे, जिनके पास बहुत थोड़ी जमीन थी, जंगल थे, कच्चे मकान थे। वे बेचारे कम्पनी और सरकार जैसे दुश्मनों से कैसे लड़ सकते थे...? सुनमा की प्राथमिकता उनके पुनर्वास और ज़मीन का अच्छा मूल्य दिलाने की थी जिसमें वह कामयाब भी हुई।

यहाँ पर लेखक ने सुनमा के सूझबूझ और बुद्धिमता का प्रमाण दिया है कि साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। हालाँकि, उसके लिए ऐसा करना अपने उसूलों से समझौता करना था परन्तु लोगों की जरूरतों, मजबूरियों, ग़रीबी और लाचारी के आगे उसके कोई मायने उसे नज़र नहीं आ रहे थे। वह जानती थी कि यदि वह विरोध में रहेगी तो उसके साथ कुछ भी अनहोनी घट जायेगी और जिन गरीबों, वंचितों और कमज़ोर तबकों के लोगों व परिवारों की नज़रें उसपर है उनकी एक आवाज़ छिन जायेगी, मिट जायेगी।

दूसरी ओर कम्पनी के अधिकारी अब यह बखूबी समझ चुके थे कि सुनमा के साथ भिड़ना आग में हाथ डालना जैसा था। सुनमा का मूल स्वभाव ही न्याय और विनम्रता थी। पक्षपात से ऊपर उठकर सर्वकल्याण व परोपकार की भावना। सुनमा के मन में स्वार्थ व लालच नाम की कोई भी चीज नहीं थी। उसने जब भी कोई कार्य किया तो दूसरों के हित और भलाई के लिए किया। इस दुनिया में सुनमा जैसे निहायत ईमानदार व सच्चे इन्सान कम ही मिलते हैं।

परंतु सुनमा को अपनी नदी के लिए कुछ भी न कर पाने का गहरा दुःख अवश्य था। सुनमा सोचती कि यदि वह विधायक होती तो नदी की मदद के लिए वह अपने उसूलों तक से समझौता कर लेती। नदी के जीवन के लिए... उसकी निर्मलता के लिए... उसके हमेशा बहते रहने के लिए। परन्तु यह सम्भव ही न था। सुनमा को नदी भी अब अपनी ही तरह अकेली, असहाय और मृतप्राय लगने लगी थी। कितनी विडम्बना थी कि जिस सुनमा के भीतर वह नदी बहती रहती थी वह उसके बचाव के लिए कुछ नहीं कर पा रही थी। उसे ऐसा प्रतीत होता जैसे- **"एक भयंकर और डरावनी चीख़ों का शोर चारों तरफ फैला महसूस होता जैसे हज़ारों लोगों ने उस नदी को लोहे की जंजीरों में जकड़ लिया हो और वह उन आततायियों से छूटने का प्रयास कर रही हो। उन्हें आँगन में भी अजीब-सी घुटन महसूस होती थी। कई बार लगता जैसे उस बिके हुए घराट के भीतर वह नदी घुट-घुटकर मर रही है। तड़प रही है। चीख़ रही है। दादी को पुकार रही है कि दरवाज़े को खोलकर उसे बाहर ले जाये"** ।[४]

नदी का मरना सुनमा दादी को भगवान का मरना जैसा लगा था। जिस नदी में नहाकर हज़ारों-लाखों लोगों ने पुण्य कमाया तो वह पुण्य इस तीर्थ और साथ बहती नदी को क्यों प्राप्त नहीं हुआ...? नदी का सौदा हो गया था। उसका पानी बूँद-बूँद बिक गया था। उसके बहाव, उसकी निरन्तरता और उसके निर्मल जल से सनी

लहरों पर कम्पनी का कब्ज़ा हो गया था। नदी का एकालाप उनको बहुत आहत और परेशान करता।

बाँध के भीतर नदी जैसे मृतप्राय-सी थी। वेगहीन। सुनमा दादी को वह अत्यन्त भयभीत लगती थी। डरी-सहमी हुई-सी। आतंकित और आकुल, उसकी उद्विग्नता और कँपकँपाहट दादी को भीतर तक अशान्त कर देती। हवा के वेग जब पानी की सतहों पर दौड़ते तो नदी की थरथराहट कलेजा चीर देती थी। जड़ीभूत वह स्वतन्त्र होना चाहती थी, बँधनमुक्त होना चाहती थी। दादी सुनमा से नदी का दुःख देखा नहीं जाता था।

दादी सुनमा ने बेहद दबंगता से अपना जीवन जिया था। लोगों की सेवा की थी, पंचायत की प्रधानी की, साथ ही बहुत लम्बा वैधव्य और एकाकीपन काटा था। वे जिरहबाज़ी और तर्क-वितर्क में भी माहिर थीं। उनकी विद्वता और हाज़िरजवाबी कई बार लोगों को चकित कर देती थी। उनकी दलीलबाज़ी के आगे पढ़े-लिखे निरक्षर लगने लगते। किसी भी मसले पर उनकी दलीलें अकाट्य रहतीं। महकमे के जिन अफसरों से आम जन भय खाते उनके आगे वे छाती तानकर खड़ी हो जाया करती थीं। उनके वाद-प्रतिवाद और निरूपण विस्मित कर देते थे। इसके बावजूद भी वह अति विनम्र और आजिज़ थी।

अपने गाँव और इलाके में शोषण और अन्याय के प्रति उनके विरोध तर्कसंगत होते थे। यही कारण था कि कई गाँवों को डूबाकर वहाँ बाँध के निर्माण को लेकर उनकी असहमति, अस्वीकृति और खिलाफत जगजाहिर थी। इसको लेकर सरकार, कम्पनी और उनके अपने गाँव के कुछ बिचौलियों से उनका बार-बार टकराव भी हुआ। अपने विस्थापन से अधिक वेदना उनकी नदी के मर जाने की थी, नदी के अस्तित्वहीन होने की थी। वे कुछ करने में पूर्णतया असमर्थ थीं, निःसहाय और अक्षम। नदी की हत्या के लिए दादी सुनमा मनुष्य जाति को जिम्मेदार ठहराती हैं, सरकारी योजनाओं को जिम्मेदार मानती हैं।

बाँध में कैद नदी को देखकर सुनमा सोचती है- **"पहले वह नदी कितनी अंतहीन थी। जैसा प्रकृति का असीम और अपार विस्तार। परंतु अब नदी, नहीं है, बस गन्धला खारा पानी ही पानी है। खड़ा पानी। तड़पता पानी। मरा हुआ पानी। वह अब नहीं हिलता। अभिशापित जैसा। मानो किसी तपस्वी ने उस नदी को शापित कर दिया हो"**। [५]

उन्हें बाणासुर याद आ जाता। साथ-महाभारत काल के बहुत से असुर भी जिन्होंने लोगों पर अत्याचार किये। जल, जंगल और ज़मीन को तहस-नहस कर दिया। ...तो क्या कम्पनी और सरकार में बैठे ये लोग भी उन्हीं के वंशज तो नहीं...? दादी सुनमा यह सोचते हुए सिहर-सी जाती। ... सभी असुर ही तो थे..? और भारी गर्दनों वाली उनकी मशीनें उनकी सेनाएँ जो दिन-रात इस धरती को काटती और निगलती जा रही थी। नदी को सोखती जा रही थी। पीती और निगलती जा रही थी। पीसती और कूटती जा रही थी।

जब शतु (लड़की) सुनमा देई से पूँछती है, **"दादी इस नदी का नाम क्या है?"**[६] दादी कहती है, **"हम तो इसको दरिया ही बोलते थे। पर अब तो यह डैम बन गया है। नदी कहाँ रही अब?"**[७] लड़की कहती है- **"नहीं! नहीं! दादी नदी अभी भी है। नहीं गयी वह कहीं भी। यहीं तो है। हमें लगता है न दादी वह मर गयी है। नदी कभी नहीं मरती, दुश्मनों से छिप जाती है। उनके गन्दे इरादों और कृत्यों से दूर भागती है वह। पाताल में चली जाती है। "**[८]

हमारी सरकारें और कम्पनियाँ कितनी-कितनी बार मारती रहती है एक नदी को... कभी आरम्भ से.. कभी मध्य से तो कभी उसके अन्तिम छोर से...। जिस नदी किनारे सूर्यपुत्र कर्ण ने कुरुओं के लिए दिग्विजय प्राप्त कर नदी के किनारे बसे कई राज्य जीत कर अपने अधीन कर लिए थे। जिस नदी के किनारे से होते हुए पाण्डव अपने वनवास के दौरान हिमालय की ओर गये थे। जिस नदी किनारे भगवान परशुराम का अत्याचारी संसरबाहु से युद्ध हुआ था। जिस नदी किनारे ऋषि जमदग्नि और रेणुका माँ का आश्रम था। उस नदी को लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए तबाह कर दिया। उसे मार दिया। जगह-जगह उसपर बाँध बनाते रहे। उसके रास्ते रोकते और बदलते रहे।

दादी सुनमा ने नदी के न जाने कितने रूप-रंग अपने जीवन में देखे थे। वह जानती थी कि, **"नदी वर्ष-भर में दो एक बार ही भयंकर रूप लेती थी। एक उस समय जब हिमालय में बर्फ पिघलती और दूसरा तब जब बरसातें होती और असंख्य सहायक छोटी-छोटी नदियाँ और नाले पहाड़ों और घाटियों के शिखरों से उसमें आकर मिल जाते। दादी के घराट के आँगन तक वह कूदती, उपद्रव करती आती। जब वह अप्रसन्न, आक्रोशित, उद्दण्ड और क्षुब्ध होती तो उसकी क्रोधान्विति भयंकर उत्पात मचाती। उसकी आमर्ष सातवें आसमान पर होती"**। [९]

उसके इस क्रोधोन्माद के लिए कोई और नहीं आज का मानव दोषी है जो अपने स्वार्थ के लिए उसे यातनाएँ दे रहा है। उसके तटबंधों को तोड़ता जा रहा है। लोगों को क्या हो गया है कि वे प्रकृति को ही समाप्त करने के लिए आतुर है। जल, जंगल और ज़मीन को नष्ट करने के लिए आमादा है। उनकी आँखें शायद अपने-अपने स्वार्थों और जातिगत असमानताओं ने अदीप्त, निस्तेज़, अस्वच्छ और धुमैली कर दी है। जिसकी वजह से मानव अपने भीतर तिल-तिल मरते आदमी का अग्निवाह भी नहीं देख पा रहे हैं।

लेखक के अनुसार, **'शतु' नदी अकेली नहीं है जिसका वर्चस्व, स्वतन्त्रता और अलहड़पन छीना गया है। अनगिनत हैं उसकी बहनें, जो इस पुरुषत्ववादिता की शिकार हुई हैं। कोई सुरक्षित नहीं है...न यमुना, कावेरी, कृष्णा न गंगा, गोदावरी, गोमती और राप्ती। न करतोया, कोसी, चन्द्रभागा, स्पिति और न चम्बल, चिनाव, झेलम और ब्रह्मपुत्री। महानदी, शिप्रा, नर्मदा और दामोदरा भी कहाँ जीवित रही है। वध कर दिये गये हैं सभी के। सरयु, सिन्धु और सोन सभी घुट-घुट कर मर रही है। तड़प रही है। गायब कर दी गयी है। प्रदूषित हुए वे साँसें कहाँ ले पा रही है?"**[१०]

नदी की निर्मलता, उसका नीला रंग, उसकी विनम्रता और सहजपन... उसकी डूब... उसकी चंचलता...उसकी रुखाई.... सदाशय... सौम्यता... उसकी धड़कनें... नदी की तड़प... उसकी अगाध पीड़ाएँ... उसका विस्तार... उसका संघर्ष...उसकी ठण्डक... उसकी उष्णता और सबसे ज़्यादा उसके भीतर छुपा हुआ आक्रोश और विनाश। साथ... साथ बिछोह... विरह... वियोग भी...। मनुष्य की प्रकृति पर निर्भर करता है।

पर्यावरण का विनाश मनुष्यों की असीमित महत्वकांक्षी प्रवृत्ती के कारण हुआ है। यदि आज पर्यावरण को बचाने की मुहिम चल निकली है तो इसीलिए नहीं कि मनुष्यों को पर्यावरण से प्रेम है बल्कि इसीलिए की मनुष्य अपने आपको बचाना चाहता है। मनुष्य को जो कुछ भी प्राप्त हुआ है, वह प्रकृति के कारण ही मिला है। प्रकृति की सबसे बड़ी खासियत यह है कि, वह अपनी चीजों का उपभोग स्वयं नहीं करती। मनुष्य, मनुष्य के बीच भेदभाव करता है परंतु प्रकृति किसी के साथ भेदभाव या पक्षपात नहीं करती। विकास के नाम पर वृक्षों की अंधाधुंध कटाई की जा रही है, पहाड़ों को काटा जा रहा है। जिसका दुष्परिणाम मानव जीवन पर पड़ रहा है। यदि इसे नहीं रोका गया तो विनाश अवश्य है। जिन साधनों का आविष्कार विकास के लिए किया गया है वे ही पतन का कारण बन गई है।

**संदर्भ**


1. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१३१
2. दुर्ग द्वार पर दस्तक, कात्यायनी पृ-५८
3. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१४१
4. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१६३
5. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१७२
6. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१७३
7. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१७३
8. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१७३
9. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१९३
10. नदी-रंग जैसी लड़की, एस.आर.हरनोट, वाणी प्रकाशन, पृ-१९४


**उपन्यास- नदी-रंग जैसी लड़की**

**लेखक- एस.आर.हरनोट**

**प्रकाशक- वाणी प्रकाशन**

**पृष्ठ- 236**

**मूल्य- 499/-**


**पता : डॉ. मधुबाला शुक्ल**

**901, मनिशापूर्ति, न्यू शास्त्री नगर,**

**अपोजिट सिद्धार्थ हॉस्पिटल, गोरेगांव (वेस्ट)**

**मुंबई- 400401**

**संपर्क- 7977238286**

रिपोर्ट

# शिल्पी चड्ढा स्मृति सम्मान 2024 का आयोजन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ

साहित्य कला और संस्कृति को समर्पित सविता चड्ढा जन सेवा समिति ने आप दिल्ली में हिंदी भवन के सभागार में शिल्पी चड्ढा स्मृति सम्मान का आयोजन किया। इस आयोजन के मुख्य अतिथि पद्मश्री सुरेंद्र शर्मा और विशिष्ट अतिथि श्री इंद्रजीत शर्मा, डॉ बृजेंद्र त्रिपाठी, डॉ ओम प्रकाश प्रजापति, डॉक्टर शंभू पंवार रहे। वर्ष 2024 का हीरो में हीरा सम्मान अध्यात्मगुरु, दार्शनिक, चिंतक, विचारक प्रेममयी गुरु मां को दिया गया। साहित्यकार सम्मान बनारस के डॉक्टर राघवेंद्र नारायण सिंह को दिया और गीतकार सम्मान बेंगलुरु की श्रीमती प्रीति राही को दिया गया। शिल्पी चड्ढा स्मृति सम्मान जो की प्रत्येक वर्ष साहित्याकार सविता चड्ढा जी अपनी बेटी शिल्पी चड्ढा की याद में देती हैं ,इस वर्ष भोपाल की डॉक्टर लता अग्रवाल तुलजा जी को दिया गया उनकी पुस्तक अनमोल सितारा के लिए। इस सम्मान के अंतर्गत प्रतीक चिन्ह, प्रमाणपत्र, शॉल, माला आदि के साथ 5100 की राशि भी डॉक्टर तुलजा को प्रदान की और। इस अवसर पर चुनी गई 12 पुस्तकों के लेखकों को भी सम्मानित किया गया। इस अवसर पर डॉक्टर सविता चड्ढा द्वारा संपादित स्मारिका " मैं और शिल्पी" का लोकार्पण भी किया गया और उनके नवीनतम काव्य संग्रह है "उसको ढूंढ लिया है मैंने "का लोकार्पण भी किया गया। इन लेखकों को भी इस समारोह में उनकी पुस्तकों के लिए सम्मानित किया। उनके नाम इस प्रकार हैं:

1. नाज़रीन अंसारी
2. डॉ विनय सिंघल
3. श्रीमती संतोष बंसल
4. डॉ. राम अवतार शर्मा आलोक
5. श्रीमती नीतू सिंह राय
6. श्रीमती शकुंतला मित्तल
7. श्रीमती उमंग सरीन
8. डॉ.ममता झा रुद्रांशी
9. श्रीमती पूनम सिन्हा
10. श्रीमती सीमा गर्ग
11. श्री राजीव शर्मा
12. मीना परिहार

इस अवसर पर जापान से पधारी रमा शर्मा का अभिनन्दन, स्वागत किया गया, साथ ही इंग्लैंड से पधारी जय वर्मा जी का स्वागत भी सविता चड्ढा की समिति की ओर से किया गया। इस अवसर पर दिल्ली पुलिस के सब इंस्पेक्टर ज्योति स्वरूप और और साहित्याकर डॉ विवेक गौतम का विशेष सम्मान किया गया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में श्री सुरेंद्र शर्मा, श्री इंद्रजीत शर्मा ने कहा कि ये सम्मान किसी बड़े सम्मान से कम नहीं है। विशिष्ट अतिथि के रूप में इस कार्यक्रम में रहे डॉ ओमप्रकाश प्रजापति भी, डॉक्टर शंभू पवार ,डॉ सुधा शर्मा, पुष्पा सिन्हा और सुमन मोहिनी सलोनी। खचाखच भरे इस सभागार में दिल्ली ,गुड़गांव,नॉएडा, बनारस, बेंगलुरु, भोपाल, मद्रास और विदेश से कई साहित्याकर उपस्थित थे।

# शिवना नवलेखन पुरस्कार' 2024 की घोषणा

'शिवना नवलेखन पुरस्कार' 2024 की घोषणा: रश्मि कुलश्रेष्ठ और शुभ्रा ओझा की साहित्य में दस्तक

डॉ. परिधि शर्मा का कहानी संग्रह और डॉ. अनन्या मिश्र के संस्मरण अनुशंसित।

सीहोर । साहित्य के क्षेत्र नए लेखकों की आमद साहित्य को समृद्ध करती है। शुक्रवार को शिवना प्रकाशन के नवलेखन पुरस्कारों की घोषणी हुई । जिसके जरिये चार नए लेखकों ने साहित्य के क्षेत्र में दस्तक दी। शिवना नवलेखन पुरस्कार को शुरू करने की पहल समिति की अध्यक्ष सुधा ओम ढींगरा ने शिवना साहित्य समागम में की थी। जिसके बाद शिवना प्रकाशन के संचालक शहरयार ने पुरस्कार के लिए युवा लेखकों की पांडुलिपियाँ आमंत्रित की थीं । नवलेखकों ने बड़ी संख्या में अपनी पांडुलिपि सीहोर कार्यालय में शहरयार, इंदौर में ज्योति जैन, खंडवा में शैलेन्द्र शरण, दिल्ली में पारुल सिंह और अमेरिका में चयन समिति की अध्यक्ष सुधा ओम ढींगरा को भेजी । जिसके बाद चयन समिति ने पुरस्कार के लिए पांडुलिपियों में से चयन किया। 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' 2024 के लिए रश्मि कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'शेष रहेगा प्रेम' और शुभ्रा ओझा के कहानी संग्रह 'आख़िरी चाय', को संयुक्त रूप से घोषित किया गया। इन्हें नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2025 में पुरस्कृत किया जाएगा। साथ ही नवलेखकों की किताबों का विमोचन लेखक मंच पर विश्व पुस्तक मेले में ही किया जाएगा।

पुरस्कृत लेखकों के साथ ही दो लेखकों की किताबों को समिति ने अनुशंसित भी किया है। जिसमें डॉ. परिधि शर्मा का कहानी संग्रह 'प्रेम के देश में' और डॉ. अनन्या मिश्र का संस्मरण 'कही अनकही' शामिल है। अनुशंसित किताबों का विमोचन भी विश्व पुस्तक मेले में ही किया जाएगा। शुक्रवार को घोषणा ऑनलाइन की गई। जिसमें नामों की घोषणा समिति अध्यक्ष सुधा ओम ढींगरा ने की किताबों के बारे में विस्तार से साहित्यकार पंकज सुबीर ने चर्चा की। कार्यक्रम का संचालन आकाश माथुर ने किया।

–आकाश माथुर, मीडिया प्रभारी, मो. 7000373096

## पुरस्कृत

रश्मि कुलश्रेष्ठ
'शेष रहेगा प्रेम'
(उपन्यास)

शुभ्रा ओझा
'आख़िरी चाय'
(कहानी संग्रह)

## अनुशंसित

डॉ. अनन्या मिश्र
'कही-अनकही'
(संस्मरण)

डॉ. परिधि शर्मा
'प्रेम के देश में'
(कहानी संग्रह)

समाचार

# अंडमान: एक अदभुत आकर्षण

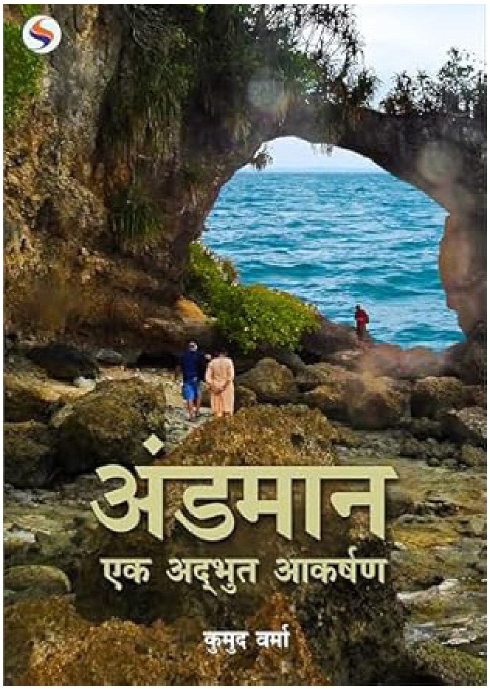


अहमदाबाद रिवर फ्रंट में चल रहे अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला में अंडमान: एक अद्भुत आकर्षण पुस्तक की लेखिका सुश्री कुमुद वर्मा जी से पुस्तक चर्चा पर मुलाक़ात हुई। यह कार्यक्रम 3 दिसंबर को सायं 5:45 पर नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन द्वारा निर्धारित था। पुस्तक चर्चा बेहद सहज, स्वाभाविक व सार्थक रही। कुमुद जी ने पूछे गये सभी प्रश्नों का जवाब अत्यंत सकारात्मक, निर्भीकता व संवेदनशीलता से दिया।

अंडमान: एक अदभुत आकर्षण, मेरे लिए इस पुस्तक का आकर्षण इसके मुखपृष्ठ से शुरू होता है , पुस्तक हाथ में आते ही इसके ग्लॉसी पन्ने व शब्दों की स्पष्टता पढ़ने की उत्सुकता को बढ़ा देते है। इस पुस्तक को पढ़ते समय आप एक यात्रा में निकलते हैं। इस यात्रा में मुझे अंडमान के बारे में विशेष तथ्य, उसका इतिहास, ब्रिटिशर्स की क्रूर यातनाओं से गुजरते देशभक्त, विभिन्न प्रजातिओं के पशु-पक्षी, फूलों की कई क़िस्में, कई आइलैंड, कोरल के कई प्रकार, मगरमच्छ, मृग व सुंदर तितलियाँ मिलीं। नारियल पानी के भी प्रकार होते हैं, मैंने इसी पुस्तक से जाना। यहाँ पर लकड़ियों के अनगिनत प्रकार है, उनकी कला से बने सामान हैं और उन सामानों से भरे बाज़ार हैं। सतर्कता व सुगमता के लिए अनमोल सुझाव हैं। पूरा अंडमान क़ैदियों द्वारा बनाया गया है। इस पुस्तक में सेल्यूलर जेल का उल्लेख है , मेरी रूह अंदर तक सिहर गई जब मैंने पढ़ा कि वहाँ क़ैदियों को एक ही कटोरा दिया जाता था ...उसी में खाना उसी में पखाना। 'ठहरे हुए व्यक्ति में एक दौड़ता हुआ सफ़र होता है' यह पुस्तक थोड़ी अलग है ..आप भी पढ़ें। लेखिका कुमुद वर्मा जी को पुनः बधाई। इस पुस्तक के पब्लिशर एवं AILF के संस्थापक श्री उमाशंकर यादव जी को बधाई व शुभकामनाएँ। आप सभी के लिए पुस्तक का लिंक प्रेषित कर रही हूँ

https://amzn.in/d/hI92V07 पुस्तक सीरीन पब्लिकेशन्स द्वारा प्रकाशित है।

**–ममता सिंह, अहमदाबाद (गुजरात), मो. 99250 52031**

# उपन्यास 'न आने वाला कल': पड़ताल और पड़ताल / सन्दीप तोमर

## आलोचनात्मक दृष्टि: मेरी नजर में उपन्यास

सन्दीप तोमर

मोहन राकेश की एक कुशल कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं । वे नयी कहानी आन्दोलन के सशक्त हस्ताक्षर थे, पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी और अंग्रेज़ी में एम ए किया । जीविकोपार्जन के लिये अध्यापन कार्य किया । कुछ वर्षो तक 'सारिका' के संपादक भी रहे। 'आषाढ़ का एक दिन','आधे अधूरे' और लहरों के राजहंस के रचनाकार के रूप में उन्होंने खूब ख्याति अर्जित की। उन्होंने कुछ उपन्यास भी लिखे- अंधेरे बंद कमरे 1971, अन्तराल 1972, न आने वाला कल 1968, काँपता हुआ दरिया (अपूर्ण), नीली रोशनी की बाँहें नामक उपन्यास उनके नाम दर्ज हैं। मोहन राकेश का तीसरा व सबसे लोकप्रिय नाटक 'आधे अधूरे' है। जिसमें उन्होंने मध्यवर्गीय परिवार की दमित इच्छाओ कुंठाओ व विसंगतियो को दर्शाया है। इस नाटक की पृष्ठभूमि एतिहासिक न होकर आधुनिक मध्यवर्गीय समाज है। 'आधे अधूरे' में वर्तमान जीवन के टूटते हुए संबंधो, मध्यवर्गीय परिवार के कलहपूर्ण वातावरण, विघटन, सन्त्रास, व्यक्ति के आधे अधूरे व्यक्तित्व तथा अस्तित्व का यथात्मक सजीव चित्रण हुआ है । जो वातावरण उनके नाटकों में उपस्थित होता है अमूमन वही अन्य रूप में उनके उपन्यास 'न आने वाला कल' में भी देखा जा सकता है, यहाँ भी लेखक टूटते सम्बन्ध, अपूर्ण व्यक्तित्व, मध्यवर्गीय परिवारों की समस्याएँ और विसंगतियां लेकर उपस्थित है । ' न आने वाला कल' मोहन राकेश द्वारा रचित एक ऐसा उपन्यास है जो एक व्यक्ति द्वारा लिए गए स्कूल से त्यागपत्र के निर्णय को लेकर कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हमारे सामने पेश करता है। इस एक निर्णय को लेने के कारण लेखक अपने मन को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर तुलनात्मक दृष्टिकोण से जीवन के कई पहलू उजागर करता है।

लेखक का स्वभाव, पत्नी से रिश्ता, स्वाभिमान की आड़ में छिपा दब्बूपन, हेडमस्टर का हौवा, साथियों से अनमनापन, परिणामों से बेपरवाही, दबंगपना, पश्चाताप की भावना, सहानुभूति, तटस्थता, सामाजिक हदबंदी आदि भावनाओं को इस उपन्यास में बखूबी उभारा गया है।

उपन्यास में लेखक द्वारा एक विशेष परिस्थिति में फँसे व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं को बहुत सूक्ष्म रूप में वर्णित किया गया है। यह न केवल समाज में फैली अनैतिकता को अभिव्यक्ति देता है, बल्कि उसको झेलते व्यक्ति की त्रासदी का मार्मिक चित्रण भी प्रस्तुत करता है। घटना और अनुभूति का इतना उत्तम संगम अन्यत्र दुर्लभ है। उपन्यास तेजी से बदलते आधुनिक जीवन में व्यक्ति के आर्थिक संघर्ष, स्त्री-पुरुष संबंध को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करता है। लेखक कहानी के आरम्भ से अन्त तक 'अतीत के चलचित्र' की भाँति मात्र यादों में खोया रहता है। कहा जा सकता है कि कहानी मात्र एक दिन में सिमटी हुई है।

एक दिन मनोज सक्सेना अपने 3 वर्ष के स्कूल मास्टर के जूनियर हिन्दी अध्यापक के पद से इस्तीफा दे देता है। यह उसका अपना स्वभाव है कि जब वह आवेशित होता है या तनावग्रस्त होता है तो वह अचानक ऐसा कुछ कर डालता है जो आश्चर्यजनक तो होता ही है, उससे उसे बाद में पश्चाताप भी महसूस होता है। उदाहरण स्वरूप-विधवा से शादी करने का निर्णय।

हमेशा अंदर से कुछ और चाहते हुए भी बाहर से एक मुखौटा पहने रहना ताकि दूसरों की नज़रों में अच्छे बने रहा जाए, अपने भीतर के गुस्से की चुभन को पीसते हुए एक नयी शुरुआत करने की कथा प्रकटीकरण है ये उपन्यास।

"न आनेवाला कल" उपन्यास में एक भारतीय क्रिष्टियन स्कूल के वातावरण का चित्रण है। मोहन राकेश ने इस उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली को अपनाया है। नायक के रूप में "मैं" को प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास की कथा-वस्तु बहुत संक्षिप्त है। उपन्यास के आरंभ में चौपाल के नीरस वातावरण तथा विद्यालय की छिद्रान्वेषी कूटनीति से कथा-प्रवाह आगे बढ़ता है। नायक हिंदी अध्यापक है जो तीन साल पूर्व नियुक्त हुआ है। पूर्व-पत्नी की मृत्यु के पश्चात दूसरी पत्नी शोभा के दुर्व्यवहार से वह इतना खिन्न होता है कि एक दिन विद्यालय से त्याग-पत्र दे देता है। उसके इस त्याग-पत्र पर विद्यालय में व्यापक प्रतिक्रिया होती है। हेड मास्टर

से लेकर चपरासी और उसकी बीबी तक उसके निर्णय से प्रभावित होते हैं। अंत में नायक विदाई लेकर चला जाता है। पति-पत्नी के तलाक और अलगाव को लेकर लेखक ने इस उपन्यास का ताना-बाना बुना है। लेखक इसकी कथा के माध्यम से पाठकों के समक्ष कोई स्पष्ट तस्वीर रखने में नितांत असमर्थ प्रतीत होता है। उपन्यास के अधिकांश पात्र अपने अस्पष्ट विचारों के चलते निराले प्रतीत होते हैं। सभी पात्र हिवलर, नुरुला काशनी, शोभा, बानी आदि अपने चारों ओर खिंची हुई परिधि का भ्रमण करते हुए यह जान पाने में असमर्थ हैं कि उनका उद्देश्य क्या है? उनके सामने आने वाले कल की रुप-रेखा भी स्पष्ट नहीं है। मोहन राकेश ने उपन्यास में आधुनिक जीवन की विसंगतियों, संत्रास, अकेलेपन, मानव संबंधों की कृत्रिमता और मृत्यु-भय आदि को अस्तित्ववादी चिंतन के प्रकाश में स्पष्ट करने के चेष्टा की है। वे ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करते हैं जिनसे मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति में छटपटाहट पैदा होती है। शोभा नायक में पूर्व पति की छवि को देखना चाहती है,वह खुद में स्पष्ट नहीं है कि आखिर वह चाहती क्या है, ऐसी ही स्थिति नरूला की भी है। ये दोनों पात्र अपने अतीत और वर्तमान में रहते हुए, अहं को चोट पहुँचाते हुए अपने अस्तित्व की समस्या से जूझते रहते हैं।

उपन्यास नितांत यथार्थवादी दृष्टिकोण से लिखा अवश्य गया है लेकिन यह बिलकुल भी यथार्थवादी नहीं है। अधिकांश स्थानों पर इतना मानसिक ऊहा-पोह और तर्क-वितर्क है कि पाठक को कथा से ही ऊब होने लगती है। उपन्यास का अंत भी जिस अप्रत्याशित और जुगुप्सित तरीके से उन्होंने किया है उसे देखकर लगता है कि क्या यह 'आषाढ़ का एक दिन','आधे अधूरे' और 'लहरों के राजहंस' के रचनाकार मोहन राकेश जैसे यशस्वी लेखक की ही कृति है। ? शायद मोहन राकेश की यह कृति टैगोर के उपन्यासों से भी अधिक उबाऊ हो गयी है। मोहन राकेश इस उपन्यास की नीरसता को दूर करने के लिए अश्लीलता का सहारा लेते भी दिखाई देते हैं लेकिन यहाँ उनका यह उपाय भी कारगर साबित नहीं होता। यही यह उनकी प्रथम कृति होती तो सम्भव था कि पाठकों, आलोचकों, समीक्षकों को उनसे अधिक की अपेक्षा न होती लेकिन चूँकि वे ख्याति-प्राप्ति एवं संवेदनाशील रचनाकार रहे तो उनकी लेखनी से इस प्रकार स्त्री-पुरुष के अनैतिक संबंधों के कथ्य के रुप में लेकर इस उपन्यास की निसृत होना उनके आलोचकों और पाठकों दोनों के लिए ही अत्यंत आश्चर्यजनक रहा। एक विद्यालय का अध्यापक अपने विद्यालय के चपरासी की पत्नी के साथ जिस्मानी सम्पर्क करे, ये इस पेशे के हिसाब से अनुचित और अवांछनीय कर्म है। यहाँ मोहन राकेश की वर्णन की शैली भी चौकाने वाली है। यद्यपि विभिन्न समस्याओं के प्रतिपादन व विशिष्ट जीवन-दृष्टि व संवेदना की अभिव्यक्ति के लिहाज से यह उपन्यास कोई प्रभाव नहीं छोड़ता लेकिन विसंगतिपूर्ण परिवेश में आधुनिक मानव की नियति/बदनियति, उसकी अस्तित्ववादी विचार-धारा को अभिव्यक्ति देने में अवश्य ही सफल रहा है।

उपन्यास का सार-संक्षेप

मनोज सक्सेना, पैंतीस वर्ष अकेले बिताने के बाद एक दिन शोभा से, जिसे वह कुछ ही दिनों से जानता था, जो विधवा होने के बाद अपने पिता के घर रहने आई थी, विवाह कर लेता है। काफी समय साथ रहने के बाद भी दोनों औपचारिकता का संबंध ही निभा रहे थे। 'यह जान लेने के बाद कि न तो हम अपनी-अपनी हदें तोड़ सकते हें और न ही एक-दूसरे की हदबंदी को पार कर सकते हैं, हमने एक युद्ध विराम में जीना शुरू कर दिया था। और फिर एक दिन शोभा अपने पहले पति के घर खुरजा चली जाती है। अपने पीछे कई सवाल छोड़े हुए। वह मनोज से रिश्ता तो बनाए रखना चाहती है लेकिन अपनी कुछ अनकही शर्तों के साथ।

मनोज फिर से अपने अकेलेपन की ज़िन्दगी जीने लगता है और रोज़ रात को सोने से पहले के 5-6 घण्टे, जो कि सिर्फ खाली समय होता था, बहुत धीरे आगे बढ़ते थे। और इन्हीं घण्टों में ज़िन्दगी के पिछले कुछ वर्षों की परतें एक-एक करके उधदती चली जाती हैं।

मनोज को याद आता है वह दिन जब शोभा को पहली बार घर लाया था और उसके अपने अकेले घर में रहते अकेले मन की बात बताई थी और शोभा का कहना कि 'तुम सब चीजों से छुटकारा पाना नहीं चाहते, सही मायने में अपने लिए घर चाहते हो। मनोज के घर में टूटा-फूटा सामान भरा था। तब शोभा ने कहा था-'क्या-क्या कूड़ा भर रखा है तुमने यहाँ! मैं यहाँ आकर पहला काम करूंगी कि यह सामान उठवा कर इसकी जगह नया सामान मंगवाऊँगी। पर मनोज ने बताया कि उसके पास नए सामान के लायक पैसे नहीं हैं और दूसरा सामान स्कूल से मिलेगा नहीं।

कुछ था जिससे वह छुटकारा पाना चाहता था। उसी उहापोह में उसे स्कूल के जूनियर हिन्दी मास्टर के रूप में जिन्दगी उसकी अपनी ज़िन्दगी नहीं लगती थी। शोभा के पति के रूप में भी वह इसे जिन्दगी नहीं मानता था। लेकिन उसे यह भी मालूम था कि त्यागपत्र देने से शोभा के साथ सम्बन्ध की स्थिति हल नहीं हो सकती। वह दोनों ही समस्याओं का हल निकालना चाहता था

लेकिन अचानक उसके सामने अन्य समस्याएँ खड़ी हो जाती थी। आत्महत्या का विचार तो था लेकिन हर स्थिति के परिणाम को स्वयं देखने की चाह, मन को इस पटरी पर जाने से रोक देती थी।

शोभा को पत्र लिखना चाहते हुए भी कभी पत्र पूरा नहीं हो पाया और लिखा गया स्कूल हेडमास्टर मिस्टर व्हिस्लर को स्कूल छोड़ने का त्याग पत्र। त्यागपत्र देते ही उसे ऐसा लगने लगा जैसे स्कूल का हर कर्मचारी उससे बात करना चाहता हो। मिस्टर बुधवानी, हेडमास्टर के माइंड का एक आईना था। त्यागपत्र वाले दिन वह कुछ ज़्यादा ही उत्तेजित था। मिसेज पार्कर कापियाँ जाँच रही थी जो कभी भी पूरी नहीं जाँची जाती थी, कोहली जेम्स बॉनी हाल, एकमात्र कुंवारी मेट्रन, मिसेज़ ज्याप्रफें, मिस्टर व्हाइट, मिस्टर क्राउन सभी उसका मन टटोलते नज़र आ रहे थे।

मनोज सोचता है-''मैंने त्यागपत्र क्यों दिया।'' यह सवाल उसके अन्दर से भी कोई बुधवानी या पार्कर उससे पूछ रहा था। वह इस बात से भी डरा हुआ था कि कहीं मिस्टर व्हिसलर के पास जाने से उसका निश्चय टूट न जाए।

मिस्टर बुधवानी के समाचार देने और आग्रह करने पर ही मनोज हेडमास्टर से मिलने जाता है। हेडमास्टर से स्कूल में सभी डरते हैं। उनका खौफ इस कदर छाया था कि कोई ठहाका मारकर हँस नहीं सकता, समय से लेट नहीं हो सकता, कक्षा नहीं छोड़ सकता। असुविधा की स्थिति में शिकायत नहीं कर सकता और न ही अपनी इच्छा से स्कूल में खाना आराम से खा सकते। छोटी सी कापियाँ जाँचने की गलती हो या लेट होने की, हेडमास्टर अच्छी क्लास लेता था। सभी एक तरह से उसे बर्दाश्त कर रहे थे।

हेडमास्टर ने मनोज के त्यागपत्र देने का कारण जानना चाहा था। वह बहुत ही बेतकल्लुपफी से बात करने लगा। उसने मनोज पर किए गए तीन वर्ष पहले की मेहरबानियों की याद दिलाई। जैसे कि केवल उस अकेले को ही फैमिली क्वार्टर दिया गया था जबकि इसका कारण स्कूल से दूरी तथा बीमार पड़ोस था कि अन्य कोई वहाँ आना ही नहीं चाहता था। फिर हेडमास्टर ने उसके परिवार की भी पूछताछ की। पारिवारिक कारण न पता चलने पर हेडमास्टर ने हिदायत भी दे डाली 'स्कूल एक संस्था है। और संस्थाएँ व्यक्तियों से चलती हुई भी व्यक्तियों पर निर्भर नहीं करती। अपनी जगह के लिए एक आदमी बहुत अनुकूल हो सकता है, पर किसी भी जगह के लिए एक आदमी अनिवार्य नहीं होता।'

लेकिन मनोज किसी भी परिस्थिति में वहाँ रुकने को तैयार नहीं था। इसका अर्थ सभी अपने प्रकार से अटकलें लगाकर ले रहे थे। हेडमास्टर को भी यह अपने खिलाफ एक चाल ही नज़र आती है और वह उसे चेतावनी दे डालता है-''मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि स्कूल में कौन कहाँ क्या कर रहा है, क्या सोच रहा है? स्कूल से बाहर से जो लोग यहाँ अपना जाल बिछा रहे हैं उन्हें भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ। ... मैं जब तक यहाँ हूँ, उनमें से कोई मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

मनोज अपने सहयोगियों के कारनामें याद करता है जो किसी न किसी तरह से स्कूल व हेडमास्टर के प्रति अपना रोष प्रकट करते रहते हैं। लेकिन स्पष्ट कहने का सामर्थ्य किसी में नहीं है, नौकरी छूटने का भय सबको बना रहता है।

मनोज को स्कूल के अनुशासन का कड़ाई से पालन किया जाना गवारा तो था लेकिन बच्चों की पिटाई से वह परेशान हो जाता। लड़कों को सजा के रूप में पीठ पर बेंत मारे जाते जिसकी गवाही देनी पड़ती। इसे भी चुपचाप इस तरह सह जाना पड़ता जैसे मिस्टर व्हिसलर की त्यौरियों को और 'डाल' के नाम से खाई जाने वाली बेहूदा दाल को। यह एक तरह की सामाजिक यातना ही थी जो सिर झुकाए सभी स्वीकार करते हुए जी रहे थे।

विद्यालय के नाटक की तैयारी के दौरान जिमी ब्राइट के साथ हुई मुलाकात के दौरान मनोज को पता चलता है कि इस विद्यालय को एक प्राइवेट विद्यालय में बदलने की प्रक्रिया चल रही है जिस कारण स्टाफ के सभी सदस्य उसके त्यागपत्र का यह प्रमुख कारण मान रहे हैं। शिक्षा विभाग के किसी व्यक्ति से कोई अच्छी जान-पहचान है शायद। जिमी स्वयं हेडमास्टर से परेशान था क्योंकि उसे नाटक का चुनाव पसंद नहीं था। उसके अनुसार यह नाटक स्कूली छात्रों के लिए उपयुक्त न था और यह उसने पूरी रिहर्सल होने के बाद ही कहा था। रोज़ भी अच्छी-खासी परेशान थी, फिर भी नाटक हुआ और रोज़, जो हमेशा एक बेहतरीन अदाकारा रही थी, ने लोगों को काफी निराश किया। उसकी अपनी उदासी ही इसका कारण रही। डिनर के दौरान रोज़ ने अपनी सारी भड़ास पूरे स्टाफ के सामने बहुत ही मार्मिक और व्यंग्यात्मक तरीके से निकाली। जिस कारण हेडमास्टर काफी नाराज़ हुआ। सभी लोग फुस-फुसाते हुए बाहर निकल गए।

पूरे डिनर के समय बानी हाल, मनोज की तरफ आकर्षित होती रही और कुछ हरकतें करती रही। आखिर उसने मनोज से मिलने का समय ले ही लिया। ड्यूटी के आखिरी दिन, रिपोर्ट्स भरना, डिनर की ड्यूटी और फिर बानी हॉल से मिलने जाना। एक ही दिन की बात थी।

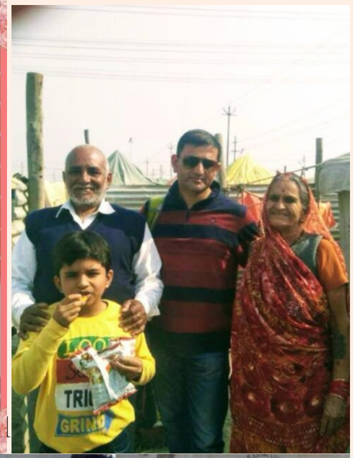

सुभाष चन्द्र यादव

संदर्भ -"एक थी चिड़िया" फूलचंद यादव, सर्वभाषा ट्रस्ट , 2024, सुभाष चंद्र यादव , 19 अक्टूबर, 2024 , साहित्य अकादेमी सभागार

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक देवेन्द्र कुमार बहल द्वारा डेकोरपैक इंडिया प्रा. लि., 291डी, सेक्टर 6, आई.एम.टी., मानेसर, गुड़गाँव (हरियाणा) से मुद्रित, बी-3/3223, वसंतकुंज, नई दिल्ली 110070 से प्रकाशित किया । -संपादक : देवेन्द्र कुमार बहल

# पूज्यनीय बाबू जी के जीवन की कुछ झलकियाँ